संक्षिप्त केशव

महाकवि केशव के काव्य के कुछ उत्कृष्ट अंशों का संकलन

संपादक

रामसिंह एम. ए.

भूतपूर्व प्रोफेसर, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी

और

अध्यक्ष, शिक्षा-विभाग, बीकानेर

प्रकाशक

सूरी ब्रदर्स

गणपत रोड, लाहौर

प्रकाशक—
मदनलाल सूरी
सूरी ब्रदर्स
गणपत रोड, लाहौर।

प्रथम आवृत्ति
१९९८
मूल्य १॥)

मुद्रक—
श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'
भारती प्रिंटिंग प्रेस
अस्पताल रोड, लाहौर

दो शब्द

केशवदास हिन्दी के एक प्रमुख कवि हैं। सूर और तुलसी के बाद ही उनकी गिनती होती रही है। हिन्दी की परीक्षाओं में उनके ग्रंथ प्रायः नियत रहते हैं, विशेषतः रामचन्द्रिका। रामचंद्रिका के अनेक अंश बहुत सुन्दर और भाव-पूर्ण हैं, परंतु, प्रबंधकाव्य की दृष्टि से कुल मिला कर वह सफल काव्य नहीं। उसे पढ़कर कवि की असफलता ही अधिक ध्यान में आती है। जो दो-चार आलोचनाएँ केशव के सम्बन्ध में निकली हैं उनसे भी महत्त्व के बदले असफलता ही अधिक हृदयंगम होती है। बी० ए० आदि के विद्यार्थी प्रायः कहा करते हैं कि जब केशव इतने असफल कवि हैं तो वे हमें क्यों पढ़ाये जाते हैं।

क्या केशव वास्तव में ऐसे हीन कवि हैं? केशव में अनेक त्रुटियाँ हैं पर उनका कारण है। केशव संस्कृत के पंडित थे और उस समय तक संस्कृत-साहित्य अपने प्राचीन आदर्श से गिर चुका था। फिर केशव थे दरबारी कवि। तीसरे उनने जो रचनाएँ कीं वे लक्षण-ग्रंथों के रूप में। इन्हीं कारणों से उनकी कविता में उच्च आदर्श और स्वाभाविकता की कमी दृष्टिगोचर होती है। उनकी त्रुटियाँ स्वाभाविक नहीं, परिस्थिति के अनुरोध से हैं। सूर और तुलसी की भाँति वे परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ सके।

केशव में कवित्व-शक्ति का अभाव नहीं। वे हृदयहीन नहीं

थे जैसा कि कहा गया है। उदाहरणों के रूप में होते हुए भी उनके अनेक पद्य बड़े भाव-पूर्ण हुए हैं। उनकी भाषा ऊबड़खाबड़ है, पर जहाँ पर सवैया और कवित्त छंदों में उनने रचना की है वहाँ भाषा बड़ी ही प्रवाह-पूर्ण हुई है। वीररस के प्रसंग में उनने भुजंगप्रयात, उपजाति आदि छंदों को लिया है जिनमें प्रवाह के साथ-साथ ओज भी वे सफलता के साथ भर सके हैं।

केशव प्रधानतया मुक्तक कवि हैं पर प्रबंध भी, जहाँ पर उनने रीति के झंझटों से बचते हुए लिखा है अर्थात् जहाँ अलंकार आदि भरने की ओर ध्यान नहीं रहा है या कम रहा है, बहुत अच्छा लिखा है और उसमें अच्छी सफलता प्राप्त की है। उदाहरणार्थ रामाश्वमेध का प्रसंग लिया जा सकता है। यदि सारी रामचंद्रिका को वे इसी शैली में लिखते तो यह ग्रंथ हिंदी का एक सुन्दर प्रबंध-काव्य होता।

केशव सर्वथा असफल कवि नहीं हैं। उनकी कृतियों में भी सुंदर कविता विद्यमान है जो उन्हें हिंदी-साहित्य के प्रमुख कवियों में स्थान दिला सकती है। इस संकलन में कतिपय ऐसे ही अंशों को संकलित किया गया है। आशा है केशव की प्रतिभा का वास्तविक निदर्शन कराने में यह संकलन सहायक हो सकेगा।

केशव के पद्यों का शुद्ध पाठ अभी तक कहीं से नहीं छपा। वेंकटेश्वर प्रेस आदि से जो संस्करण छपे हैं उनमें केशव का असली पाठ नहीं, किंतु प्रेस के पंडितों द्वारा 'शोधा हुआ' (?) पाठ है जिसमें शब्दों को सर्वत्र संस्कृत-रूप दे दिया गया है। केशव-कौमुदी के सम्पादक लाला भगवानदीनजी ने भी पाठ के

संशोधन की ओर ध्यान नहीं दिया और अपने संपादित संस्करणों में वेंकटेश्वर प्रेस वाला वही 'शोधा हुआ' पाठ रखा है। इस प्रकार केशव के ग्रंथ अशुद्ध रूप में ही पढ़े-पढ़ाये जाते हैं। तुलसी और सूर की भाँति, केशव की कृतियों के पाठ का समुद्धार भी अत्यन्त आवश्यक है। इस संकलन में इस ओर ध्यान दिया गया है और पाठ हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार रखा गया है।

इस पुस्तक में 'महाकवि केशवदास' नामक अपने निबंध को प्रस्तावना-रूप में उद्धृत करने की स्वीकृति दे कर मित्रवर प्रोफेसर नरोत्तमदास स्वामी ने मुझे अत्यन्त अनुगृहीत किया है।

—संकलनकार

विषय-सूची

प्रस्तावना

अवतरणिका



सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करहिं प्रकास॥

कविता-करता तीन हैं तुलसी केसव सूर।
कविता-खेती इन लुनी सीला बिनत मजूर॥

उत्तम पद कवि गंग के उपमा को बलबीर।
केसव अरथ गँभीर को सूर तीन गुन धीर॥

कवि का दीन्ह न चहै विदाई।
पूछै केसव की कविताई॥

दीन्ही न चाहै विदाई नरेस तो
पूछत केसव की कविताई।

कठिन काव्य को प्रेत।

महाकवि केशव

१—जीवनी

महाकवि केशवदास जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके पूर्व-पुरुष संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। वे समय-समय पर विविध नरेशों द्वारा सत्कृत होते रहे। उनमें से दिनकर बादशाह अलाउद्दीन के कृपापात्र हुए। उन्होंने गया आदि तीर्थों पर लगने वाला कर बादशाह से माफ़ करवाया। उनके प्रपौत्र त्रिविक्रम मिश्र ग्वालियर-नरेश द्वारा पूजित हुए। त्रिविक्रम मिश्र के प्रपौत्र हरिनाथ किन्हीं तोमर-पति के आश्रित थे। उनके पुत्र कृष्णदत्त मिश्र को ओड़छा-नरेश रुद्रप्रताप ने अपने यहाँ बुलाकर पुराण-वृत्ति पर नियुक्त किया। इनके पुत्र काशीनाथ हुए जो ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान थे। इनके तीन पुत्र थे—बलभद्र, केशवदास और कल्याणदास। बलभद्र और कल्याणदास ने भी हिन्दी में कविता लिखी। बलभद्र का 'नखशिख' प्रसिद्ध है।

केशव का जन्म कब हुआ इस का ठीक पता नहीं चलता। विद्वानों ने संवत् दिए हैं—

१६०८ (मिश्रबन्धु)
१६१२ (रामचन्द्र शुक्ल)
१६१८ (लाला भगवानदीन और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

केशव इन्द्रजीत के आश्रय में रहते थे। ओड़छा-नरेश रुद्रप्रताप के पीछे मधुकरशाह गद्दी पर बैठे। इनके कई पुत्र थे जिनमें दूलहराम, रतनसेन, इन्द्रजीत और वीरसिंहदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। दूलहराम मधुकरशाह के बाद राज्य के अधिकारी हुए। इनका प्रसिद्ध नाम रामशाह था। इन्होंने राज्य की व्यवस्था का सारा भार इन्द्रजीत को ही सौंप रखा था। इन्द्रजीत के यहाँ केशव का बड़ा आदर-सम्मान था। वे उन्हें गुरु की तरह मानते थे। उन्होने केशव को २१ गाँव दिए थे, जिनमें एक अभी तक उनके वंशजों के अधिकार में बताया जाता है। इन्द्रजीत के लिए केशव ने एक जगह लिखा है—

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग-जुग
केसौदास जा के राज राज सो करत है।

इन्द्रजीत साहित्य, सङ्गीत और कला के बड़े प्रेमी थे। उनके यहाँ बहुत-सी कला-निपुण पातरें (गणिकाएँ) रहती थीं, जिनमें रायप्रवीन बहुत प्रसिद्ध थी। वह कविता भी करती थी। उसकी अनेक कविताएँ हिन्दी में प्रसिद्ध हैं।[२] वह केशव की शिष्या थी। काव्य-शिक्षा उसने केशव से ही प्राप्त की थी। उसी के अनुरोध से केशव ने कविप्रिया नामक ग्रन्थ बनाया था। रायप्रवीन पातर होते हुए भी पतिव्रता थी। एक बार अकबर ने ओड़छा-नरेश पर एक करोड़ का जुर्माना कर दिया। इन्द्रजीत ने केशव को भेजा कि वे प्रयत्न करके उसे माफ़ करा आवें। केशव बीरबल से मिले और उन्हें अपनी काव्यशक्ति से प्रसन्न किया। बीरबल उनकी काव्यशक्ति से अत्यन्त प्रभावित हुए और बादशाह से कह कर जुर्माना माफ़ करा दिया। साथ ही स्वयं भी केशव को बहुत कुछ पुरस्कार दिया। बीरबल की प्रशंसा में केशव के लिखे कई-एक छन्द

२—कविताकौमुदी, प्रथम भाग देखिए।

मिलते हैं ।[3] जुर्माने की माफ़ी की शर्त के तौर पर बादशाह ने रायप्रवीन को दरबार में भेजने के लिए लिखा । तब उसने वहाँ जा कर बादशाह को अपनी कविता से प्रभावित किया[4] और अपने पातिव्रत्य की भी रक्षा की ।

इन्द्रजीत के आश्रय में केशव ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ—रसिकप्रिया (१६४८), कविप्रिया (१६५८) और रामचन्द्रिका (१६५८) की रचना की । रसिकप्रिया महाराज मधुकरशाह के जीवनकाल में लिखी गई थी जब इन्द्रजीत महाराजकुमार थे । सम्वत् १६४९ में मधुकरशाह का देहान्त हुआ और रामशाह गद्दी पर बैठे । इन्होंने १३ वर्ष राज्य किया । सम्वत् १६६२ में जहांगीर ने ओड़छे का राज्य वीरसिंहदेव को दे डाला । केशव इनके आश्रय में भी रहे और इनके नाम पर 'वीरसिंहदेव-चरित' लिखा । सम्वत् १६६७ में उन्होंने विज्ञान-गीता समाप्त की और राज-सेवा से अवकाश ग्रहण कर स्त्री-सहित गङ्गा-सेवन करने लगे । उनकी वृत्ति तथा उनका पद उनके लड़कों को दे दिया गया ।

केशव का देहांत कब हुआ इसका कोई पता नहीं चलता । कोई सम्वत् १६७४ और कोई सम्वत् १६८० में अनुमान करते हैं ।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारी केशव के शिष्य थे । उस समय ओड़छे के पास गुढ़ो गांव में नरहरिदास नाम के एक महात्मा रहते थे । केशव उनके यहां आया-जाया करते थे । बिहारी के पिता केशोराय (या

३—कविता कौमुदी, प्रथम भाग, बीरबल और केशवदास के प्रकरण देखिए ।

४—उसका सुनाया हुआ एक छन्द इस प्रकार बताया जाता है—

विनती रायप्रवीन की सुनियै साहि सुजान ।
जूठी पतुरी भखत हैं बारी, बायस, स्वान ॥

केशौ-केशौराय) नरहरिदासजी के शिष्य थे । उनका निवास ग्वालियर में था पर पत्नी की मृत्यु के उपरांत गुरु-सत्सङ्ग के लिए बालक बिहारी को लेकर ओड़छे ही चले आए । नरहरिदास जी के अनुरोध से केशव ने बिहारी को कुछ समय तक अपने पास रखकर साहित्य और काव्य-रीति की शिक्षा दी ।

२—केशव के ग्रन्थ

केशव के नीचे लिखे दस ग्रन्थ बताए जाते हैं—

(१) रामचन्द्रिका	(२) कविप्रिया
(३) रसिकप्रिया	(४) विज्ञान गीता
(५) नखसिख	(६) रतनबावनी
(७) वीरसिंहदेव-चरित	(८) जहांगीर-जस-चन्द्रिका
(९) रामालंकृत मञ्जरी	(१०) छन्दशास्त्र का कोई ग्रन्थ

इनमें से अन्तिम दोनों रचनाओं के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। कई लोगों का कहना है कि रामालंकृत ही छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। नं० ७ और नं० ८ की रचना वीरसिंहदेव के शासनकाल में हुई । वीरसिंहदेव-चरित एक आख्यान-काव्य है, जिसमें वीरसिंहदेव और अबुलफज़ल के युद्धों का वर्णन है। इसी वीरसिंह ने अबुलफज़ल को मारा था। कविताकी दृष्टिसे यह साधारण रचना है पर कुछ ऐतिहासिक महत्व रखती है। जहांगीर-जस-चन्द्रिका में केशव ने आश्रयदाता के आश्रयदाता बादशाह जहाँगीर की प्रशंसा में लिखी थी। यह भी शिथिल रचना है। जान पड़ता है कि इन्द्रजीत का आश्रय छूट जाने पर केशव का न तो वह सम्मान रहा

और न उनमें वह उत्साह। इसी कारण ये दोनों रचनाएँ बहुत साधारण हुईं।

नं० ६ अर्थात् रतनबावनी केशव की सबसे पहिली रचना है। इसमें मधुकरशाह के छोटे पुत्र और इन्द्रजीत के बड़े भाई रतनसेन की वीरता का वर्णन है, जिसने केवल सोलह वर्ष की अवस्था में ही युद्ध में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी। यह साधारणतया अच्छी रचना है।

इसमें डिंगलकाव्य का अनुसरण किया गया है और छन्द भी छप्पय अपनाया गया है। राजस्थान में बहुत से कवियों ने बावनियां लिखी हैं। जटमल की बावनी प्रसिद्ध है।

नं० ५ नखसिख की रचना भी अच्छी बताई जाती है। कविप्रिया में भी केशव ने एक नखसिख लिखा है।

नं० ४ विज्ञानगीता केशव की वृद्धावस्था की शांतरस-प्रधान रचना है। इसमें कृष्ण मिश्र यति कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का बहुत कुछ आधार लिया गया है। इसके अनेक छन्द बहुत सुन्दर हुए हैं। रामचन्द्रिका और कविप्रिया में भी इसके कई पद्य आए हैं।

नं० २ और नं० ३ साहित्य-रीति-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। केशव से पूर्व हिन्दी में रीति ग्रन्थों का अभाव सा ही था। एकाध छोटी-छोटी रचनाएँ हुई थीं पर वे नहीं के समान ही थीं। केशव संस्कृत के धुरन्धर विद्वान थे। रीति-ग्रन्थों का उन दिनों खूब प्रचार था। केशव को हिन्दी में यह अभाव अखरा और उन्होंने इन दो ग्रन्थों की रचना कर साहित्य को एक नए पथ पर अग्रसर किया। प्रारम्भिक रचनाएँ होने से इनमें त्रुटियाँ हो सकती हैं पर हिन्दी साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ने में ये खूब समर्थ हुईं। इनका प्रचार काफी हुआ और लोग इन्हीं से काव्य करना

सीखने लगे। अब उन्हें संस्कृत का मुख ताकने की आवश्यकता नहीं रह गई।

रसिकप्रिया महाराजकुमार इन्द्रजीत के अनुरोध से लिखी गई थी। इसमें रस और रस-सामग्री के विविध उपादानों का वर्णन है। शृङ्गाररस को बहुत प्रधानता दी गई है। अन्यान्य रसों को शृङ्गार में ही परिगणित कर दिया गया है। इस ग्रन्थ में १६ प्रकाश हैं जिनमें निम्न लिखित विषयों का वर्णन है—

(१) शृङ्गार के दो भेद संयोग और वियोग
(२) नायक के भेद
(३) नायिका के भेद
(४) दर्शन और श्रवण
(५) दम्पति चेष्टा और मिलन
(६) विभाव, भाव और हाव
(७) अष्ट प्रकार नायिका
(८) पूर्वानुराग
(९) मान विप्रलम्भ
(१०) मान-मोचन
(११) विप्रलम्भ
(१२) करुण और प्रवास विप्रलम्भ
(१२) सखियाँ
(१३) सखी-कर्म
(१४) शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रस
(१५) कैशिकी वृत्तियाँ
(१६) रस-अनरस

प्रत्येक विषय का पहले दोहे में लक्षण दिया गया है और फिर उदाहरण। प्रत्येक विषय के प्रच्छन्न और प्रकाश ये दो भेद किए गए हैं। रीतिविवेचन तो सन्तोषजनक नहीं पर उदाहरण रूप में जो पद्य दिए गए हैं उनमें से अधिकांश सुन्दर हैं।

कविप्रिया काव्य-शिक्षा का ग्रन्थ है। इसके उत्तरार्ध में अलङ्कारों का वर्णन किया गया है। इसमें नीचे लिखे अनुसार १६ प्रभाव हैं—

(१) नृपवंश वर्णन
(२) कविवंश वर्णन
(३) दोष
(४) कवि-व्यवस्था
(५) सामान्यालङ्कार-वर्णालङ्कार (काव्य में किस वस्तु को किस रङ्ग की वर्णन करना चाहिए)
(६) ,, वर्ण्यालङ्कार (काव्य में विविध वस्तुओं का कैसा वर्णन करना चाहिए)
(७) ,, भूमि-भूषण-वर्णन
(८) ,, राज्यश्री-भूषण-वर्णन
(९) विशिष्टालङ्कार (स्वभावोक्ति आदि)
(१०) ,, (आक्षेप, इसमें बारहमासा भी वर्णित है)
(११) ,, (क्रम आदि) इसमें रसवत् अलङ्कार के प्रसङ्ग में रसों का वर्णन किया है।

(१२)	,,	उक्ति-अलङ्कार (वक्रोक्ति आदि)
(१३)	,,	(समाहित आदि)
(१४)	,,	(उपमा)
(१५)	,,	(नखसिख और यमक अलङ्कार)
[1](१६)	,,	(चित्रालङ्कार)

इसकी रचना में अलंकार शेखर, काव्यादर्श और कविकल्पलता-वृत्ति का आधार लिया गया है। रामचन्द्रिका, रसिकप्रिया और विज्ञान-गीता के भी अनेक पद्य इसमें उद्धृत किये गये हैं। इसका क्रम भी रसिक प्रिया के ही समान है अर्थात् दोहे में लक्षण देकर फिर उदाहरण दिया गया है। रीति-विवेचन इसका भी वैज्ञानिक नहीं पर उदाहरण-स्वरूप जो पद्य दिये गये हैं वे अधिकांश में कवित्व-पूर्ण और भावमय हैं।

तीसरे प्रभाव में कवि ने १८ प्रकार के दोष बताये हैं। उनमें से प्रथम के पाँच नाम अंध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक लिखे हैं। ये नाम संस्कृत के रीति-ग्रन्थों में नहीं मिलते यद्यपि इनमें से कई एक के लक्षण उनमें बताये दोषों के लक्षणों से मिल जाते हैं। डिंगल के रीति ग्रन्थों में दस दोषों का उल्लेख है जिनमें से चार के नाम अंध बधिर, पंगु, नग्न वही हैं जो केशव ने लिखे हैं पाँचवाँ मृतक डिंगल के 'अपस' से मिलता है।

पन्द्रहवें प्रभाव में जो नखसिख वर्णन आया है वह प्रायः वही है जिसका उल्लेख आगे हो चुका है।

केशव का यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस पर दर्जनों टीकाएँ लिखी गयीं पुराने ज़माने में बिहारी-सतसई को छोड़ कर और किसी ग्रन्थ

---

१. मिश्र-बंधु कवि-प्रिया में १७ अध्याय बताते हैं। १६वें में यमक का और १७वें में चित्रालंकार का वर्णन है।

पर इतनी टीकाएँ नहीं बनी अधिकांश टीकाएँ राजस्थान में बनीं। लोग बहुत दिनों तक इसी के सहारे कविता करना सीखते रहे। कवि होने के लिए इसका अध्ययन आवश्यक समझा जाता था।

नं० १ रामचन्द्रिका– यह केशव का सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ है, यह महाकाव्य है। इसमें ३९ प्रकाशों या अध्यायों में राम-चरित्र वर्णित है। प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से यह रचना त्रुटि-पूर्ण है पर इसके अनेक पद्य बहुत सुन्दर, चमत्कारपूर्ण और भावमय हुए हैं। कवि का ध्यान कथा की ओर उतना नहीं जितना वर्णन की ओर है। वास्तव में केशव ने इसे प्रबंध काव्य के रूप में लिखा नहीं जान पड़ता। उनका उद्देश्य रीति के विविध अंगों के उदाहरण एक ही काव्य में एक साथ उपस्थित करने का था। इसी कारण इस ग्रन्थ में कवि ने छन्दों के भी सभी भेदों और प्रभेदों के उदाहरण देने का प्रयास किया है। एक एक दो-दो अक्षरों के छन्द भी नहीं छूटे। रामचन्द्रिका में जितने प्रकार के छन्दों एवं उनके भेदों-प्रभेदों के नाम आए हैं उतने पिंगल के भी शायद ही किसी ग्रन्थ में मिले।

रामचन्द्रिका की रचना हनुमन्नाटक के आदर्श पर की गई जान पड़ती है। हनुमन्नाटक वास्तव में नाटक नहीं, वह सम्वादात्मक पद्यों का संग्रह-मात्र है। पद्यों के पूर्व वक्ताओं के नाम तथा नाटकीय सूचनाएँ दे दी गई हैं। कहीं कहीं गद्य की भी एकाध पंक्ति आ गई है। केशव ने नाटक नहीं काव्य लिखा, अतः कथा-सूत्र रखने का प्रयत्न किया है पर इसमें वे पूरी तरह सफल नहीं हुये। जगह जगह कथा सूत्र टूटता हुआ दीख पड़ता है।

रामचन्द्रिका की कथा का आधार मुख्यतया वाल्मीकीय रामायण है, पर कवि ने अन्यान्य ग्रन्थों से भी बहुत सी बातें ली हैं। हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव नाटक से बहुत कुछ लिया गया है। रामाश्वमेध

प्रकरण का आधार जैमिनीय रामाश्वमेध है[1] राजश्री-निन्दा प्रकरण का कादंबरी और राम-विरक्ति-प्रकरण का योगवासिष्ठ।

रामचन्द्रिका के पद्यों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) संवादात्मक, (२) वर्णनात्मक और (३) कथा-सूत्र जोड़ने वाले।

कथा-सूत्र जोड़ने वाले पद्यों से भाव-पूर्ण होने की आशा नहीं की जा सकती। वे नीरस होते हैं पर प्रबन्ध-रस से सरस प्रतीत होने लगते हैं, केशव में प्रबन्ध-रस की कमी है। अतः ये पद्य कविता की दृष्टि से साधारण हैं।

केशव के संवाद अधिकांश में सुन्दर हैं। उनके संवादात्मक पद्य भाव-पूर्ण हैं। पर उनमें से अधिकांश संस्कृत के अनुवाद-मात्र हैं। सुमति-विमति का संवाद प्रसन्नराघव के वार्तालाप का अनुवाद है। रावण-बाण-संवाद पर और राम परशुराम-संवाद पर भी, प्रसन्नाराघव का काफी प्रभाव है। भरत-कैकेयी का संवाद हनुमन्ननाटक के अंक पद्य का अनुवाद है, यही बात रावण-हनुमान और अंगद-रावण के संवादों पर लागू होती हैं।

वर्णनात्मक पद्य ग्रन्थ के सर्वश्रेष्ठ अंश हैं। उनमें से अनेक बड़े ही भावपूर्ण चमत्कारिक और प्रभावशाली बने हैं। अधिकांश पद्य अलंकार प्रधान हैं उनमें अनेक स्थलों पर कल्पना की उड़ान दर्शनीय है। ये पद्य फुटकर पद्यों के रूप में तो बहुत सुन्दर हैं पर प्रबन्ध में सब जगह ठीक से नहीं खपते! कहीं कहीं इनके कारण अनावश्यक विस्तार हो जाता है और कहीं-कहीं तो ये दूध में कंकर की तरह खटकते हैं।

---

१ डा० रामकुमार वर्मा का यह कथन ठीक नहीं कि लव-कुश-प्रसंग उनने वालमीकीय रामायण के आधार पर ही लिखा। वाल्मीकीय रामायण का लव-कुश-प्रसङ्ग बिलकुल ही भिन्न प्रकार का है।

प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका को सफल काव्य नहीं कहा जा सकता। पर इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि केशव सफल प्रबन्ध काव्यकार नहीं हो सकते थे। जहाँ पर वे रीति के बन्धनों से बँधकर नहीं चले हैं, जहाँ अलंकारों का ध्यान उन्हें भूल गया है, जहाँ उनने संस्कृत ग्रन्थों का आधार नहीं लिया है, सारांश यह कि जहाँ वे स्वतन्त्र कविता कर चले हैं, वहाँ प्रबन्ध का वे अच्छा निर्वाह कर सके हैं। रामाश्वमेध-प्रसंग इस कथन का अच्छा उदाहरण है। रामाश्वमेध के पूर्व के अधिकांश की रचना केशव ने हनुमन्नाटक का आधार लेकर, उसके आदर्श पर, की जान पड़ती है पर रामाश्वमेध लिखते समय यह आधार नहीं रह गया था। वे स्वतन्त्र थे। इसी कारण रामाश्वमेध प्रकरण प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से पूर्णतया सफल हुआ है। छंदों के अजायबघर से भी उनका यदि पीछा और छूट गया होता तो यह प्रकरण और भी सफल हुआ होता।

—००—

३—केशव-काव्य की आलोचना

केशव हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ कवियों में से हैं, पुराने लोग उन्हें सूर और तुलसी के समकक्ष रखते आये हैं—

कविता करता तीनि हैं तुलसी केसव सूर।

उधर आधुनिक आलोचकों ने उन्हें हृदय-हीन तक कह डाला है। कवि के लिए सहृदय होना सब से आवश्यक है। बिना हृदय के कोई कैसे कवि हो सकेगा ?

यह सच है कि केशव में अनेक खटकने वाली बातें हैं, पर उन्हें हृदय-हीन कहना उचित नहीं जान पड़ता। उनके हृदय को परिस्थिति और वातावरण ने बहुत कुछ दबा लिया था। उनके दोष समय और वातावरण के फल हैं। तुलसी की भाँति केशव उनसे ऊपर नहीं उठ

सके पर जहाँ कहीं उठ सके हैं वहाँ उनमें महाकवि की विशेषताएँ पूर्ण-रूप से प्रकट हुई हैं, वहाँ उनकी कविता वास्तव में हृदय-हारिणी हुई है अवश्य ही ऐसे स्थल कम हैं, इसी कारण वे प्रबन्ध-कवि के रूप में सफल नहीं हो सके।

मुक्तक-कवि के रूप में केशव अधिक सफल हुये हैं। रसिकप्रिया और कविप्रिया में भाव पूर्ण पद्य बड़ी संख्या में मिलेंगे। रामचन्द्रिका के छन्द भी मुक्तक पद्यों के रूप में पढ़े जाने पर हृदय-रञ्जनकारी सिद्ध होंगे।

(१) रस-वर्णन

केशव प्रधानतया शृङ्गारी कवि हैं। उनकी रचना का अधिकांश शृङ्गार से सम्बंध रखता है। रसिक-प्रिया का तो विषय ही शृङ्गार है। शृङ्गार उन्हें इतना प्रिय है कि अन्यान्य रसों को उनने शृङ्गार का ही अङ्ग मान लिया है। हिन्दी के शृङ्गारी कवियों में केशव का ऊँचा स्थान है। रीति कवियों में बिहारी, देव जैसे एकाध कवि ही इस सम्बन्ध में उनसे आगे बढ़े हुये कहे जा सकते हैं।

केशव के शृङ्गार रस के कुछ उत्तम उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

नायिका की शोभा

भूखन सकल घनसार ही के, घनस्याम,
कुसुम-कलित केस, रही छवि छायी सी।
मोतिन की लरी सिर, कंठ कंठ-माल हार,
और रूप ज्योति जान हेरत हेरायी सी।
चंदन चढ़ाये चारु सुन्दर सरीर सब,
राखी जनु सुभ्र सोभा वसन बनायी सी।

सारदा सी देखियत, देखो जाइ केसौराइ,
ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हायी सी ॥

तन आपने भावै सिंगार नहीं ये, सिंगारि-सिंगार सिंगारै वृथा हीं ।
अत्र-भूखन नैननि भूख है जाकी सु तो पै सिंगार उतारे न जाहीं ।
सब होत सुगंधन ही तें सुगंध, सुगंध में जान सुगंध वृथा हीं ।
सखि, तोहि तें हैं सब भूखन भूखित, भूखन तें तुम भूखित नाहीं ॥

× × ×

पूरन कपूर पान खाये सो मुख-वास,
अरुन अधर रुचि सुधा सों सुधारे हैं ।
चित्रित कपोल लोल लोचन मुकुर मैन,
अमल झलक झलकनि मोहि मारे हैं ॥
भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे ही होइ,
आँजी ऐसी आँखि, केसोराइ हिय हारे हैं ।
काहे को सिंगारि कै बिगारत है,मेरी आली,
तेरे अंग सहज सिंगार ही सिंगारे हैं ॥

कितना अच्छा होता यदि केशव ने अपनी कविता के सम्बन्ध में यह विचार रखा होता ।

बैठी सखीन की सौंहैं सभा, सबही के जु नैनन माँझ बसै ।
बूझे तें बात बनाइ कहै, मन ही मन केसवराइ, हँसै ॥
ग्वालनि है इत सैन, उतै पिय-चित्त चितावन यों चितसै ।
कोउ जानै नहीं, दृग दौरैं जबै, छिन तैं हरि-आनन ह्वै निकसै ॥

लाज

पहिले तजि आरस आरसि देखि घरीक घसै घनसारहि लै ।
पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगोछे में आछे अँगोछन कै ॥

कहि केशव, मेद जवादि सों माँजि, इते पर आँजे में अंजन दै।
बहुरौ दुरि देखौं तौ देखौं कहा, सखि, लाज तो लोचन लागिय है॥

पूर्वराग

सोहैं दिवाइ-दिवाइ सखी इक बारक कानन आनि बसाये।
जानै को, केसव, कानन तें कित ह्वै हरि नैनन माँझ सिधाए॥
लाज के साज धरे ई रहे सब, नैनन लै मन सौं जु मिलाये।
कैसी करौं अब, क्यों निकसैं री, हरे-ई हरे हिय में हरि आये॥
केशव, कैसे हुं ईठ न दीठ ह्वै दीठ परे रति ईठ कन्हाई।
ता दिन तें मन मेरे को आनि भयी सो भयी, कहि क्योंहु न जाई॥
होहिगी हाँसी जो आवै कहूँ कहि, जानि हितू हित बूझन आयी।
कैसे मिलौं री, मिले बिन क्यों रहौं, नैनन हेत, हिये डर, माई॥

× × ×

कहूँ बात सुनै सपनेहू विजोग की होन कहै दुइ टूक हियो।
मिलि खेलियै जा सहुँ बालक तें कहि ता सों अबोल क्यों जात कियो॥
कहियै कहा, केसव, नैनन को, बिन काजहि पावक-पुञ्ज पियो।
सखि, तू बरजै अरु लोग हँसैं कहि काहे को पेम को नेम लियो॥

प्रिय का पूर्व-राग

सोच, सखी भरि लेत विलोचन, काँपत देखत फूले तमालहिं।
भूले से डोलत बोलत नाहिन, बाग गई किधौं तेरेई तालहिं॥
देख्यो जु चाहति, देखि न आवति ऐसे में हौं न दिखाऊँ री लालहिं।
आजु कहा दिखसाधि लगी, जब देख्यो सुहाइ कछू न गोपालहिं॥

मान

सिखै हारी सखी, डरपाइ हारीं कादंबिनी,
दामिनि दिखाइ हारी निसि अधरात को।

झुकिझुकि हारी रति, मारि मारि हारयो मार,
हारी झकझोरति त्रिविधि गति बात की ॥
दई निरदई दयी वाहि काहे ऐसी मति,
जारत जु रैन - दिन दाह ऐसी गात की।
कैसे हूँ न माने हौं मनाइ हारी केसौराइ
बोलि हारी कोकिला, बोलाइ हारी चातकी ॥

विरह-वर्णन

केशव का विरह-वर्णन अधिकांश में अतिशयोक्ति पूर्ण है उसमें ऊहात्मक पद्धति का अवलम्बन भी अनेक स्थानों पर किया गया है। पर ऐसे चित्र भी हैं जिनमें अतिशयोक्ति होने पर भी वेदना की भाव-पूर्ण व्यंजना है।

प्रवास

केसव प्रात बड़े ही बिदा कहँ आये प्रिया पहँ नेह-नहे री।
आवौं सही चन हौं जो कहौं हँसि बोल द्वै ऐसे बरयह कहे री ॥
को प्रति उत्तर देइ, सखी सुनि लोल बिलोचन यों उमहे री ॥
सौंह करौं हरि हारि रहे, दिन बीसक लौं अँसुवा न रहे री।

× × ×

चलत चलत दिन बहुत बितीत भये,
सकुचन कत नित चलत चलाए हौ।
जानत हैं ते, कहौ, कहा नाहिनैं मिलत आनि,
जानि यह छाड़ी मोह बढ़त बढ़ाये हौ ॥
मेरी सौं तुमहिं हरि, रहियौ सुख-ही-सुख,
मोहूँ है निहारी सौंह रहौं सुख पाये हौ।

चले ही वनत जौ, तौ चलिये, चतुर पिय,
सोवत ही जैयो छाँड़ि, जागौंगी हौं आये हीं ॥

× × ×

जौ हौं कहौं 'रहिये' तौ प्रभुता प्रगट होति,
चलन कहौं तो हित हानि नाहि सहनो ।
'भावै सो करहु' तो उदास-भाव, प्राननाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक-लाज वहनो ॥
केसौराइ की सौं तुम सुनहु, छबीले लाल,
चले ही वनत जो पै नाहीं, राज, रहनो ।
तैसियै सिखावो सीख तुम ही सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो ॥[1]

यह पद्य संस्कृत के एक पद्य का स्वतन्त्र अनुवाद है पर अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है—ऐसा कि अनुवाद जान नहीं पड़ता।

विरह

हरित-हरित हार, हेरत हियो हिरात,
हारौं हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं ।
वन-माली व्रज पर वरखत वन-माली,
वनमाली दूर दुख केसव कैसे सहौं ॥

---

१ मा याहीत्यपमंगलं व्रज सखे ! स्नेहेन हीनं वचः ।
तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वैषाऽप्युदासीनता ॥
नो जीवामि त्वया विनेति वचनं संभाव्यते वा न वा ।
तन् मां शिक्षय, नाथ, यत् समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते ॥

हृदय-कमल नैन देखि कै कमल-नैन,
भयी हौं कमल-नैन, और हौं कहा कहौं।
आप-घने घनस्याम घन ही से होत,
घनस्याम के दिवस घनस्याम बिन क्यों रहौं॥

✿ ✿ ✿

सीतल समीर टारि, चन्द्र-चन्द्रिका निवारि,
केसौदास, ऐसे ही तो हरख हिरातु है।
फूलन फैलाइ डारि, झारि डारि घनसार,
चन्दन को डारे चित चौगुनो पिरातु है॥
नीर-हीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही तें,
छीर कै छिरीकै कहा धीरज धिरातु है।
पायी है तैं पीर ? किधौं यों ही उपचार करै ?
आगि को तो डाढ़ो अँग आगि ही सिरातु है॥

✿ ✿ ✿

फूल न बिछाउ सूल फूलन हैं हरि बिन,
दूरि करि माला बाला—व्याल सी लगति है।
चौंर चलाउ जनि, बीजन डुलाउ मति,
केसव, सुगंध बायु बाइ सी लगति है॥
चन्दन चढ़ाउ जिन, ताप सी चढ़त तन,
कुंकुम न लाउ, अंग आग सी लगति है।
बारबार बरजति, बावरि हैं ? बारों आनि,
चाँदनी न ल्याउ, बीर, बिष सी लगति है॥

निद्रोपालम्भ

आये ते आवैगी, आँखिन आगे ही डोलिहै, मानहु मोल लयी है।
सोवै न, सोवन देइ न, यों तब सो इनमें उन साथ दयी है॥
मेरियै भूल, कहा कहौं, केसव, सौत कहूँ तें सहेली भयी है?
स्वारथ ही हितु है सबके, परदेस गये हरि नींद गयी है॥

चन्द्रोपालम्भ

चन्द नहीं विस-कन्द है, केसव, राहु यही गुन लीलि न लीन्हो।
कुम्भज पावन जानि अपावन धोखे पियो पचि जान न दीन्हो॥
या सों सुधाधर, सेस विसाधर, नाम धरो, विधि है विधि हीनो।
सूर सों माई, कहा कहियै जिन पापु लै आपु बराबर कीन्हो॥

नायक की व्याजस्तुति

सीतल हू हीतल तिहारे न वसत वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप-गेहु।
आपनो जो हीरा सो पराये हाथ, ब्रजनाथ,
देकै तो अकाथ हाथ मैन ऐसो मन लेहु॥
ऐते पर, केसोराइ, तुम्हैं न परवाहि, वाहि,
वहै जक लागी, भागी भूख, सुख भूल्यो देहु।
माँडो मुख, छांडो छिन छल न, छबीले लाल,
ऐसी तो गँवारिन सों तुम ही निवाहो नेहु॥

इस पद्य में देखने में नायक की स्तुति तथा नायिका की निन्दा जान पड़ती है पर वास्तव में सच्ची प्रेमिका नायिका की स्तुति और उसकी उपेक्षा करने वाले नायक की निन्दा है। व्याजस्तुति अलङ्कार का यह बहुत ही उत्तम उदाहरण है।

नायक-नायिका के बीच कुछ वाक्-चातुर्य और परिहास भी भारतीय प्रेम-प्रवृत्ति का एक मनोहर अङ्ग है। अतः उसका विधान यहाँ के कवियों की शृङ्गार-पद्धति में चला आ रहा है। केशव ने प्रेमियों की इस छेड़छाड़ का भी सुन्दर विधान किया है—

दै दधि; दीन्हो उधार हौ, केसव ? दानि कहा जब मोल लै खैहैं।
दीन्हे बिना जु गयी हो गयी; न गयी न गयी, घर ही फिरि जैहैं॥
गो हितु, बैर कियो ? कब हो हितु ? बैर किये बरु नीको ही रैहैं।
बैर कै गोरस बेचहुगी अहो ! बेच्यो न बेच्यो तौ ढारि न दैहैं॥

❀ ❀ ❀

बन बीथिन, चलौ; कोऊ ठाली है, केसव ? हौं तुम; है तौ अरी अरिहौ।
कछू गैनिगे; गोलि न आवत; आजु ही भूलौ ? न भूलो गरे परिहौ ?
छिन है हिय में कियौं नाहिं नऊ; छिन नाही हिये तौ, लला, लरिहौ ?
हम सों गरु बूझिये ? ऐसो कहो; जू कही तौ कही,'ब कहा करिहौ ?

❀ ❀ ❀

मग री, बात सुनी इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीतो लकै।
पुनि बाँधि लयी सु नये नतना, क रहूँ-कहूँ बुँद करी छल कै॥
निकसी उहि गैल हुते जहँ मोहन, लीन्ही उतारि जबै चल कै।
पतुकी धरि स्याम खिसाइ रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै॥

(१)

मग को श्रम श्रीपति दूरि करैं सिय को
सुभ वाकल - अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको, कहि केसव,
चंचल चारु दृगंचल सों॥

यहाँ राम और सीता दोनों की ही मर्यादा पर पानी फेर दिया गया है। जगदम्बा सीता की लोक - मानस - प्रतिष्ठित भावना को इस कथन से अत्यन्त आघात पहुँचता है और हृदय में विरक्ति का भाव जागरित होता है—

(२)

जानि आगि लागी वृखभान के निकट भौन,
दौरि ब्रजवासी चढ़े चहुँ दिसि धाइ कै।
जहाँ-तहाँ सोर भारी, भीर नर-नारिन की,
सब ही की छूटि गयी लाज यहि भाइ कै॥
ऐसे में कुँवर कान्ह सारी सुक बारि कै,
राधिका जगायो और जुवती जगाइ कै।
लोचन बिसाल चारु चिबुक कपोल चूमि
चंपे की सी माला लाल लीन्ही उर लाइ कै॥

अग्निकांड जैसे बेअवसर का यह शृङ्गार अनुचित और उद्वेग-जनक तो है ही, कवि की असंस्कृत रुचि को भी सूचित करता है।

(३)

आजु या सों बोलि-चालि हँसि-खेलि लेहु, लाल,
कालिह ऐसी ग्वारि लाऊँ काम की कुमारी सी॥

इसको पढ़कर यही जान पड़ेगा कि केशव के प्रेम का आदर्श कोई ऊँचा न था।

वास्तव में उल्लिखित सब दोषों का कारण राजदरबार का वह विलासितापूर्ण वातावरण है जिसमें गणिकाओं का भी विशेष स्थान था और जिसमें केशव रहते थे। उसका प्रभाव स्वाभाविक ही था।

रसिकप्रिया में केशव ने अन्यान्य रसों को भी शृङ्गार के अन्तर्गत ही करने का प्रयत्न किया है पर इसमें वे सफल न हो सके। जान पड़ता है कि उन्होंने रसों के नाम सुन लिए थे पर उनके रहस्य को हृदयङ्गम नहीं कर पाए थे। कविप्रिया में रसवत् अलङ्कार के अन्तर्गत रसों को स्थान दिया है पर जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें से कई-एक अशुद्ध हैं।

कविप्रिया में बीभत्स रस का यह उदाहरण दिया है—

सिगरे नरनायक, असुर, विनायक, राक्षसपति हिय हारि गये।
काहू न नवायो, थल न छुड़ायो, टर्यो न टार्यो, भीत भये॥
इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आये ह्यौ पैज करे।
यश भंग हमारो भयो, तुम्हारो, रिषि, तप - तेज न जानि परे॥

स्पष्ट है कि बीभत्स रस उदाहरण के निकट से भी नहीं निकला।

कवि ने शायद समझ लिया कि हँसी शब्द आ जाने से ही हास्यरस हो गया। यह उदाहरण वास्तव में शृङ्गार का ही है।

भयानक रस का उदाहरण यह है—

ऐसे में हौं कैसे जाऊँ, दुरि हू धौं देखौ जाइ,
काम की कमान सी चढ़ाइ भौंह राखी हैं ॥

इस उदाहरण में भी वास्तव में शृङ्गार की ही प्रधानता है।

शृंगार के बाद केशव का प्रधान रस वीर है। इस रस का वर्णन उनने बहुत अच्छा किया है। प्रताप, ऐश्वर्य, वीरता, आतंक इत्यादि का वर्णन करने में केशवदास जी बहुत ही सफल हुए हैं।' राज-दरबार में रहने वाले कवि के लिए यह स्वाभाविक ही था।

रतनबावनी की रचना डिंगल-काव्य के ढंग पर हुई है। वह दोहा और छप्पय छंदों में लिखी गयी है। भाषा में द्वित्त और संयुक्त वर्णप्रधान शब्दों की योजना हुई है। वास्तविक युद्ध का वर्णन उसमें बहुत कम है फिर भी वीरोल्लास का अच्छा चित्रण है।

रतनसेन कह बात, सूर सामंत सुनिज्जिय।
करहु पैज पन धारि, मारि सामंतन लिज्जिय ॥
बरिय स्वर्ग अच्छरिय. हरहु रिपु-गर्व सर्व अब।
जुरि करि संगर आजु सूर-मंडल भेदहु सब ॥
मधुसाह-नंद इमि उच्चरइ, खंड खंड पिंडहिं करौं।
कट्टौं सु-दंत हथियान के, मर्दौं दल, यह पन धरौं ॥

गयी भूमि पुनि फिरहि, बेलि पुनि जमै फरे तें।
फल फूले तें लगहिं, फूल फूलंत झरे तें ॥

केसव, विसा विकट निकट विसरे तें आवै
बहुरि होइ धन-धर्म, गयी संपति पुनि पावै ॥
फिरि होई सुभाग सुसील मति, जगत गीत यह गाइयै ।
प्रान गये फिरि-फिरि मिलहिं, पति न, गये पति, पाइयै ॥

❀ ❀ ❀

रूपे सूर-सामंत सब, लरहिं प्रचारि-प्रचारि ।
पिछल पग नहिं चलहिं कोउ, जूझन चलहिं अगारि ॥

❀ ❀ ❀

मरन धारि मन लियो वीर मधुकर-सुत आयो ।
विचल नृपति सब म्लेच्छ देखि दल, धर्म लजायो ॥
कहुँ कुम्भस्थल सत्र कारिग कुंजर [illegible] जुरि जंगहि ।
भिल-भिल सब काढ़ियत छुरिका फेरों नहिं अंगहि ॥
कहि केसव सब जिन लोग है अतुल पराक्रम कर्म किय ।
सोइ रतनसेन मधुसाह-सुत सब रूपाया कहुँ हृदय लिय ॥

रतनसेन के युद्ध-वर्णन और रूप के बहुत अच्छे उदाहरण हैं। [illegible] में कहीं तेज-पूर्ण वर्णन देखने को मिलता है। कारण यही [illegible] युद्ध-भूमि में आते हैं तो उनके आतंक का [illegible] ही [illegible] किया गया है। [illegible] के आतंक का चित्र देखिए—

[illegible] [illegible], रघुनाथ सँभारि लीजै ।
भागो [illegible] [illegible] [illegible], दृष्टि दीजै ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भागो ॥

सुग्रीव अंगद बली हनुमन्त रोक्यो ।
रोक्यो रह्यो न, रघुवीर जहीं विलोक्यो ॥
मारयो विभीखन, गदा उर जोर ठेली ।
काली समान भुज लच्छमन कंठ मेली ॥

लंका के युद्धों में वास्तविक युद्ध का वर्णन कवि ने बहुत कम किया है। यह कमी लव-कुश के युद्धों में पूरी हो जाती है। वहाँ पर कवि ने परस्पर अमर्षपूर्ण कथोपकथन और उग्रवचनों की योजना भी की है। लव और कुश बाणों से शरीर पर ही वार नहीं करते कटूक्तियों से हृदय पर भी प्रहार करते हैं।

वीर रस के सफल चित्रण के लिये न तो भाषा-विशेष की आवश्यकता है और न छंद-विशेष की। यह बात नहीं कि संयुक्त-वर्ण-प्रधान भाषा ही वीर-रस के उपयुक्त है। न यही कि छप्पय छन्द का ही उस पर एकाधिकार है, सब कुछ कवि की प्रतिभा पर निर्भर करता है। प्रतिभाशाली कवि मधुर कही जाने वाली व्रजभाषा में भी उसी प्रकार वीर रस को भर सकता है जिस प्रकार डिङ्गल में। केशव के युद्ध-वर्णन इस बात के सुन्दर उदाहरण हैं।

रौद्र रस के उदाहरणों के लिये राम-क्रोध के दो प्रसंग देखिए। पहला प्रसंग राम-परशुराम-संवाद का है। परशुराम के सब प्रकार के वचनों को राम सहन करते चले जाते हैं पर जब परशुराम उनके गुरु विश्वामित्र पर ही आक्षेप कर बैठते हैं तो यह गुरु-निन्दा उन्हें सहन नहीं होती। वे क्रुद्ध होकर कह उठते हैं—

भगन भयो हर-धनुख, साल तुमको अब सालै।
वृथा होइ विधि-सृष्टि, ईस आसन तें चालै ॥

सकल शोक संहरहिं, सेस सिर तें धर डारै।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं, होहिं सब ही तम भारै॥
अति अमल जोति नारायनी, कहि केसव, बुड़ि जाहि बरु।
भृगुनन्द; सम्हारु कुठार, मैं कियो सरासन जुक्त सरु॥

भाषा और छन्द दोनों ही यहाँ भाव के अनुकूल हुए हैं।

दूसरा प्रसंग लक्ष्मण-मूर्च्छा के समय का है। राम विलाप कर रहे हैं। विभीषण कहते हैं कि यदि सूर्य उदय हो गया तो फिर लक्ष्मण के जीवित रहने की संभावना नहीं रहेगी, इस पर राम क्रुद्ध हो उठते हैं—

करि आदित्य अदृस्ट, नस्ट जम करौं अस्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र, करौ गंधर्व सर्व पसु॥
वलित अवेर कुवेर वलिहिं गहि देउँ इन्द्र अव।
विद्याधरन अविद्य करौं, विन सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होइ दासि दिति की अदिति, अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूर-ज, सूरज उदित हीं करौं असुर संसार वल॥

देवताओं के उद्धार के लिये जो राम इतने कष्ट सहते आये वही राम उन्हीं देवताओं का नाश कर संसार में असुरों का प्रावल्य स्थापित करने को कह रहे हैं। क्रोध के आवेश में मनुष्य सर्वथा हिताहित-ज्ञान-शून्य हो जाता है। अपराधी के साथ निरपराधियों को भी पीस डालने को तय्यार हो जाता है।

राम-परशुराम-संवाद प्रसंग में परशुराम के क्रोध के भी कई चित्र कवि ने अंकित किये हैं—

(१)

बोरौं सबै रघु-वंस कुठार की धार में वार न वाजि स-रत्थहिं।

बान की वायु उड़ाइ कै लच्छन, लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं ॥
रामहिं बाम - समेत पठै बन, कोप के भार में भूँजो भरत्थहिं ।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं ॥

(२)

क्रूर कुठार, निहारि तजे, फल ताको यहै जो हियो जरई ।
आजु तें केवल तो को महाधिक, छत्रिन पे जो दया करई ॥

(३)

अवरे जे छत्रिय छुद्र भू-तल, सोधि-सोधि सँहारि हौं ।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँडहुँ, धर्म निर्दय पारि हौं ॥

भयानक रस के नीचे लिखे उदाहरण में परशुराम के आतङ्क का सुन्दर चित्रण है—

मत्त दंति अमत्त ह्वै गये देखि-देखि न गज्जहीं ।
ठौर - ठौर सुदेस केसव दुन्दुभी नहिं बज्जहीं ।
डारि - डारि हथ्यार सूर जु जीव लै - लै भज्जहीं ।
काटि कै तन-त्रान अेकै नारि - वेखनि सज्जहीं ॥

बीभत्सरस के केशव ने जो उदाहरण दिए हैं वे शृङ्गार का मिश्रण होने के कारण, न बीभत्स के रह गए हैं न शृङ्गार के। बीभत्स और शृङ्गार परस्पर विरोधी हैं ।

करुण का चित्रण केशव ने बहुत कम किया है। रामकथा में करुण के उपयुक्त अवसरों की कमी नहीं है पर केशव अैसे सब स्थलों को प्रायः छोड़ते गए हैं । फिर भी दो - चार बहुत सुन्दर चित्र देखने को मिलेंगे ।

जब विश्वामित्र राम - लक्ष्मण को ले कर जाते हैं तो दशरथ की अवस्था का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

राम चलत नृप के जुग लोचन ।
बारि - भरित भये बारिद रोचन ॥

पाँयनि परि रिसि के, सजि मौनहि ।
केसव, उठि गये भीतर भौनहि ॥

यहाँ राजा के हृद्-गत गहरे शोक की व्यञ्जना कवि ने शब्दों द्वारा न करके उनके मौन द्वारा ही की है । राजा के मौन द्वारा उनके हृदय की गम्भीर वेदना जितनी व्यक्त हो रही है उतनी शब्दों के द्वारा क्या कभी व्यक्त हो सकती थी ?

तब पूछियो रघुराइ ।
सुख है पिता - तन, माइ ?
तब पुत्र को मुख जोइ ।
क्रम तें उठीं सब रोइ ॥

कितना स्वाभाविक चित्रण है । माताओं के हृदय-स्थित शोक की दारुणता की व्याख्या जितनी मौन के द्वारा हो रही है उतनी शब्दों के द्वारा किसी प्रकार न हो पाती ।

लक्ष्मण की मूर्छा के अवसर पर राम के शोक का चित्रण भी भाव-पूर्ण है—

लक्ष्मन राम जहीं अवलोक्यो ।
नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो ॥

वारक, लक्ष्मन, मोहि विलोको ।
मो कहँ प्रान चले तजि, रोको ॥

हौं सुमिरौं गुन केतिक, तेरे।
सोदर पुत्र सहायक मेरे॥

लोचन-बाहु तुही धनु मेरो।
तू बल-विक्रम, बारक हेरो॥

तू बिन हौं पल प्रान न राखौं।
सत्य कहौं, कछु झूठ न भाखौं॥

मोहि रही इतनी मन सँका।
देन न पाइ विभीखन लँका॥

बोलि उठो, प्रभु को पन पारो।
नातरु होत है मो मुख कारो

ऐसा अवसर रावण के सामने भी आता है। मेघनाद के मारे जाने पर उसके हृदय से ये उद्‌गार निकलते हैं—

आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल
चंद आनंद-मय त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करो, नृत्य गंधर्व-कुल,
जच्छ विधि लच्छ जच्छ-कर्दम धरौ॥
ब्रह्म-रुद्रादि दै देव त्रयलोक के.
राज को जाइ अभिसेक इंद्रहिं करौ।
आजु सिय-राम दै लंक कुल-दूखनहिं,
जग्य को जाइ सर्वग्य विप्रन बरौ॥

प्रतापी पुत्र मेघनाद के बिना आज रावण को कहीं आनन्द नहीं रह गया। समस्त त्रैलोक्य के प्रभुत्व से भी आज उसे विरक्ति हो उठी है। कितना मनोवैज्ञानिक चित्र है!

हास्यरस में परिहास के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इनमें भी शृङ्गार मिश्रित है। पर शृङ्गार और हास्य परस्पर मित्र हैं, विरोधी नहीं। प्रसङ्गानुसार दोनों रस मुख्य हो सकते हैं।

कृष्ण गोपियों का गोरस छीनकर, उनकी मटकियाँ फोड़ कर आदि अनेक प्रकारों से उन्हें बहुत तङ्ग किया करते थे। अेक बार अेक गोपी ने उन्हें खूब ही छकाया—

सखि, बात सुनो इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती लकै।
पुनि बाँधि लयी सु नये नतना, रु कहूँ-कहूँ बुंद करी छलकै॥
निकसी उहि गैल, हुते जहँ मोहन, लीनी उतारि जबै चलकै।
पतुको धरि स्याम खिसाइ रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आंचल कै॥

नीचे के उदाहरण में राधा की सखियाँ मिल कर राधा के साथ परिहास करती हैं—

आयो है एक महावन तें तिय, गावत मानो गिरा पगु धारो।
सुन्दरता जनु काम की कामिनी; बोलि—कह्यो वृखभानु-दुलारी॥
गोपि कै ल्यायी गोपालहिं वै, अकुलाइ मिली उठि सादर भारी।
केसव, भेंटत ही भरि अंक हँसी सब कोक दै गोप-कुमारी॥

अद्भुत का यह उदाहरण लीजिये—

लव-कुश के पराक्रम को देखकर विस्मित हनुमान कहते हैं—

नाम - वरण वरण लघु, वेस लघु, कहत रीझि हनुमन्त।
इतो वड़ो विक्रम कियो, जीत्यौ जुद्ध अनन्त॥

शांतरस के उदाहरण विज्ञानगीता और रामचन्द्रिका के राम-कृत राज्यश्री - निन्दा प्रकरण में देखे जा सकते हैं (सङ्कलन के पद्य देखिये)।

केशव के रसों और भावों के उदाहरणों में स्व-शब्द-वाच्यत्व (रस या भाव का नाम आना) दोष बहुत अधिक पाया जाता है पर यह दोष हिन्दी के सभी कवियों में, सूर और तुलसी तक में, खूब पाया जाता है, अतः केशव को इस सम्बन्ध में दोष नहीं दिया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इससे भाव के आस्वाद को बहुत हानि पहुँचती है।

२—प्रबन्ध-कवि केशव

केशवदास ने दो प्रबन्ध-काव्य लिखे—वीरसिंहदेव-चरित और रामचन्द्रिका। इनमें वीरसिंहदेव चरित बहुत साधारण रचना है। उसे काव्य - कोटि में नहीं रखा जा सकता। उसे प्रबन्ध-काव्य न कहकर साधारण इतिवृत्ति या आख्यान कहना अधिक उपयुक्त होगा।

रामचन्द्रिका को महाकाव्य कहा गया है। वह सर्गबद्ध काव्य है। इसका वृत्त इतिहासोद्भव है। धीरोदात्त क्षत्रिय राम उसके नायक हैं। प्रातःकाल, सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, ऋतु, मृगया, विहार, शैल, वन, सागर, रणप्रयाण, सेना, युद्ध आदि के वर्णन स्थान स्थान पर आये हैं। विविध रसों का यथायोग्य सन्निवेश हुआ है। आठ से अधिक सर्ग हैं।

इस प्रकार महाकाव्य के प्रायः सभी बाह्य लक्षण रामचन्द्रिका में पाये जाते हैं (बाह्य लक्षणों में अेक ही अैसा है जो नहीं पाया जाता वह है सर्गों की अेक-वृत्त-मयता)। परन्तु महाकाव्य का जो जीवनतत्त्व है वही रामचन्द्रिका में नहीं मिलता। जैसा कि कहा जा चुका है केशव वस्तुतः मुक्तक-कवि हैं, प्रबन्ध-कवि नहीं। प्रबन्ध-कवि के रूप में

सफलता लाभ करने में वे असमर्थ हुये हैं। पर साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनमें प्रबन्ध-काव्य लिखने की क्षमता थी ही नहीं। संस्कृत ग्रन्थों के अत्यधिक अनुसरण ने ही उनको सफलता प्राप्त नहीं करने दी। जो अंश उनने बाह्य-प्रभाव से मुक्त रहते हुये लिखे हैं उनमें उन्हें अच्छी सफलता मिली है।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं रामाश्वमेध प्रकरण इसका उदाहरण है। यदि सारा काव्य उनने इसी शैली में लिखा होता तो रामचन्द्रिका एक बहुत सुन्दर प्रबन्ध-काव्य हुआ होता। तुलसी ने भी संस्कृत से बहुत कुछ लिया पर उनने अनुकरण नहीं किया। वे सफल हुये। केशव ने अपनी प्रतिभा से काम न लेकर अनुकरण पर भरोसा रखा। वे असफल हुये।

प्रबन्धकाव्य में प्रबन्ध के दो भेद हैं—(१) इतिवृत्तात्मक और (२) रसात्मक। इतिवृत्ति का उद्देश्य कहानी कहना होता है। वह प्रबन्ध की धारा को आगे बढ़ाता है। प्रबन्ध के रसात्मक स्थल ही उसे काव्य का रूप देते हैं। उनके बिना कोरा इतिवृत्त कहानी मात्र है। इतिवृत्त कौतूहल या जिज्ञासा को तृप्त करता है, वह हृदय को मग्न नहीं कर सकता। वास्तव में महा-काव्य इन्हीं रसात्मक स्थलों की समष्टि है। इतिवृत्त की सत्ता प्रबन्ध धारा को इन्हीं स्थलों तक पहुँचाने के लिये है।

प्रबन्धकार कवि का कर्त्तव्य कथा के ऐसे ही रसात्मक स्थलों को चुन लेना है। इसी चुनाव में उसकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। इसके लिये कवि का भावुक होना आवश्यक है। केशव में इसी भावुकता की कमी दिखायी पड़ती है। रामकथा में मर्मस्पर्शी रसात्मक स्थलों की

कमी नहीं—वह उनसे भरी है । पर केशव ने ऐसे अंशों को या तो छोड़ दिया है या उनका बहुत ही चलता वर्णन—उल्लेख मात्र—किया है (या अपनी अलङ्कारों की पिटारी खोलकर बैठ गये हैं जो बेसुरे राग की भाँति बड़ी ही अखरती है) । अयोध्या कांड की कथा रामायण भर में सबसे अधिक भावपूर्ण है पर केशव ने सबसे संक्षिप्त और चलता वर्णन इसी कांड का किया है । रामचन्द्रिका में भाव के प्रति कवि की अत्यन्त उपेक्षा देख पड़ती है ।

महाकाव्य जीवन का एक पूर्ण चित्र उपस्थित करता है । उसमें इतिवृत्त की गति इस प्रकार होनी चाहिए कि जीवन की बहुत सी दशाएँ उसके भीतर पड़ जायँ । इसके लिए आवश्यक है कि कवि का जीवन का निरीक्षण विस्तृत हो । केशव ने जीवन - निरीक्षण का परिचय दिया है अवश्य पर वह विस्तृत नहीं। तुलसी ने जीवन की विविध परिस्थितियों का जैसा वर्णन किया है वैसा केशव ने नहीं । उनके द्वारा वर्णित जीवन में जीवन की बहुत थोड़ी दशाओं का समावेश हुआ है ।

प्रबंध के इतिवृत्तात्मक अंश का सम्यक निर्वाह भी केशव नहीं कर सके । प्रबंध - काव्य के लिए कथा का सुसम्बद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है । एक प्रसङ्ग से दूसरे प्रसङ्ग की शृङ्खला बराबर लगी हुई होनी चाहिए, प्रबंध की धारा कहीं पर टूटनी नहीं चाहिए । 'प्रबंध बँधा हुआ होना चाहिए, उसमें कथानक की जंजीर में की सब कड़ियों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए । नाटक में अगर बीच-बीच की कड़ियाँ छूटती जायँ तो भी काम चल सकता है, किंतु प्रबंध में नहीं ।'

रामचन्द्रिका में कथा-प्रवाह जगह-जगह खण्डित दिखायी पड़ता है । अनेक स्थानों पर कवि होने वाली घटनाओं के कारणों का कोई उल्लेख

नहीं करता। साथ ही कवि ने प्रबंध-काव्य और दृश्य-काव्य दोनों का मिश्रण सा करना चाहा है जिससे सम्वादों में और अन्यत्र भी कहीं-कहीं वक्ताओं के नामों का अध्याहार करना पड़ता है। यह नाटकीय शैली प्रबंध की धारा के लिये हानिकर हुई है।

छंदों के शीघ्र-शीघ्र बदलने ने भी कथा के प्रवाह में बाधा डाली है।

कथा की गति में बीच-बीच में बहुत लम्बे-लम्बे विराम आये हैं—वर्णनों के रूप में। ये वर्णन प्रसङ्गगत वस्तुओं या स्थानों के स्वरूप व्यौरे, या विशेषता का स्पष्टीकरण नहीं करते। वे अलङ्कार-प्रधान होते हैं। परिस्थिति-चित्रण या भावोत्पत्ति में उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। उनका विस्तार प्रायः अखरने लगता है। प्रबंध-काव्य की दृष्टि से वे व्यर्थ से हैं।

अंतर्जगत और बाह्यजगत दोनों का ही रामचंद्रिका में अभाव है। इस 'अभाव के कारण रामचंद्रिका की कथा में कहीं भी आगे बढ़ने की, अग्रसर होने की, सामर्थ्य नहीं दिखायी देती। इसमें कार्य-व्यापार बिलकुल नहीं है। केशव के लम्बे-चौड़े वर्णनों के बाद जहाँ कहीं व्यापार दिखाने का अवसर आता है वहाँ वे एक दम बड़ी सफाई से पत्ता काट जाते हैं।'

'जब कभी लम्बे-चौड़े वर्णन या सम्वाद के बाद कथा कहने का मौका आता है तो केशवदास जी व्यापार की अेक संक्षिप्त सी सूचना मात्र देकर फौरन अलङ्कार-क्रीड़ा की किसी दूसरी रङ्गस्थली में जा उतरते हैं। कथा उनकी दृष्टि में नितांत गौण चीज़ है।'

रामचन्द्रिका पढ़ते समय सुसम्बद्ध और सुगठित प्रबन्ध-काव्य

प्रतीत न हो कर फुटकर वर्णनों और सम्वादों का संग्रह सी जान पड़ती है।

रामचन्द्रिका में आये हुये सम्वाद स्वतन्त्र रूप से अच्छे हैं पर कई अेक जो लम्बे हैं, प्रवन्ध - काव्य की दृष्टि से अच्छे नहीं कहे जा सकते।

केशव अपने सम्वादों को व्यर्थ ही बढ़ा देते हैं। वे कथा-प्रसङ्ग-में उखड़े-उखड़े से लगते हैं। बाण-रावण-सम्वाद का अन्त असफल है।

चरित्र - चित्रण जो प्रवन्ध-काव्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, कर सकना कठिन है। केशव ने चरित्रों में अपनी ओर से कहीं - कहीं विशेषताएँ भरी हैं इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पर केशव में चरित्र-चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं दिखायी देता। चिरित्रों के विकास को देखने की आशा करना ही व्यर्थ है। उनके चरित्रों की रेखाएँ स्पष्ट नहीं। यदि रामायण द्वारा वे चरित्र हमारे मानस में प्रतिष्ठित न होते तो केवल केशव के वर्णन द्वारा उनकी स्पष्ट भावना नहीं कर पाते। सीता-निर्वासन के समय राम का चरित्र अपने पूर्व के चरित्र से अनमेल सा देख पड़ता है।

वर्णनों का अनौचित्य जगह-जगह खटकता है। भरत के वन-गमन के समय उनकी सेना का वीररसात्मक वर्णन प्रसङ्ग को देखते हुये अत्यन्त अनुचित है।

कवि ने कई-अेक स्थानों पर शुष्क उपदेशों को उन्हें रसात्मक रूप दिये बिना ही, घुसेड़ा है जो कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गये हैं। वे अस्थानस्थित लगते हैं। राम का कौशिल्या को पातिव्रत-धर्म का लम्बा उपदेश देना अनौचित्यपूर्ण है। वहीं पर विधवा-कर्त्तव्यों

का वर्णन अनुचित होने के साथ ही साथ अमङ्गल-व्यञ्जक भी है।

तुलसी ने भी पतिव्रत धर्म का उपदेश कराया है, पर उचित प्रसंग पर उचित वक्ता द्वारा उपयुक्त पात्र को। अनसूया अधिकारी वक्ता है और सीता उपयुक्त पात्रा। अतः यह उपदेश खटकता नहीं। राम के राज्याभिषेक के पूर्व राम द्वारा कृत राज-श्री-निन्दा और विषयोपहास भी प्रसंग के अनुकूल नहीं।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से सुन्दर और लङ्का काँडों के प्रसङ्ग अपेक्षाकृत अच्छे बने हैं। पर सब से श्रेष्ठ अंश है रामाश्वमेध प्रकरण। कथानक, चरित्र, संवाद आदि प्रत्येक दृष्टि से वह सफल प्रबन्ध काव्य का उदाहरण है। रामचन्द्रिका में यदि कहीं कथा दीखती है; कहीं भावुकता, सरसता, कौतूहल या प्रवाह दिखायी देता है। कहीं स्वाभाविक वस्तु-वर्णन और चरित्र-चित्रण है तो वह लव-कुश युद्ध में। रामचन्द्रिका का सब से श्रेष्ठ अंश इस युद्ध का वर्णन ही है।

३—केशव का चरित्र-चित्रण

प्रबन्ध काव्य में चरित्र-चित्रण सब से महत्त्वपूर्ण है। परन्तु केशव ने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। चरित्र-चित्रण केशव का उद्देश्य नहीं। जैसा कि ऊपर कह आये हैं रामचन्द्रिका में न तो चरित्रों की रेखाएँ ही स्पष्ट हैं और न व्यापार की कमी के कारण, उनका कोई विकास ही हम देखते हैं।

केशव के चरित्रों में से प्रधान-प्रधान चरित्रों का संक्षिप्त विवेचन नीचे किया जाता है। विवेचन में मुख्यतया वही बातें ली गई हैं, जो किसी अंश तक केशव के चरित्रों की विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

(१) राम—राम धीर वीर गम्भीर हैं। स्त्री होने के कारण ताड़का को मारते हुए उन्हें संकोच होता है। परशुराम के साथ उनकी बातचीत शिष्टतापूर्ण और विनय से युक्त है। पर जब परशुराम उनके गुरु की निंदा करने लगते हैं तो उन्हें क्रोध आ जाता है और वे परशुराम को लड़ने के लिए ललकार उठते हैं। पिता के वचन की रक्षा के लिए तुरन्त वन को चल देते हैं। वन जाते समय लक्ष्मण को अयोध्या में ही रहने के लिए समझाते हुए राम कहते हैं—

आइ भरत्थ कहा धौं करैं, जिय भाय गुनौ।
जौ दुख देहँ तौ लै उरगौ, यह बात सुनौ॥

आलोचकों का कथन है कि यह कहलाकर कवि ने राम के चरित्र-सौंदर्य को नष्ट कर दिया है, जिस भरत पर उनका सब से अधिक प्रेम है[1] उन्हीं के सम्बन्ध में उनका इस प्रकार सन्देह करना राम के चरित्र को गिराता है। हमारी सम्मति में यह कथन अर्थवाद मात्र है। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि राम भरत पर वास्तव में सन्देह करते रहे हैं पर यह कह कर वे लक्ष्मण को अयोध्या में रहने के लिए राजी करना चाहते हैं। लक्ष्मण को अयोध्या में रखना ही उनका यहाँ पर मुख्य उद्देश्य है।

केशव ने राम के बालि-वध का समर्थन नहीं किया है। उसका अनौचित्य उनने राम के मुख से स्वीकार कराया है—

यह सांटो लै कृष्णावतार।
तब ह्वैहौ तुम संसार पार॥

---

१ अरु जदपि अनुज तीन्यौं समान।
पै तदपि भरत भावत निदान॥ (रामचन्द्रिका १३।७५)

का वर्णन अनुचित होने के साथ ही साथ अमङ्गल-व्यञ्जक भी है।

तुलसी ने भी पतिव्रत धर्म का उपदेश कराया है, पर उचित प्रसंग पर उचित वक्ता द्वारा उपयुक्त पात्र को। अनसूया अधिकारी वक्ता है और सीता उपयुक्त पात्रा। अतः यह उपदेश खटकता नहीं। राम के राज्यविषेक के पूर्व राम द्वारा कृत राज-श्री- निन्दा और विषयोपहास भी प्रसंग के अनुकूल नहीं।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से सुन्दर और लङ्का काँडों के प्रसङ्ग अपेक्षाकृत अच्छे बने हैं। पर सब से श्रेष्ठ अंश है रामाश्वमेध प्रकरण। कथानक, चरित्र, संवाद आदि प्रत्येक दृष्टि से वह सफल प्रबन्ध काव्य का उदाहरण है। रामचन्द्रिका में यदि कहीं कथा दीखती है; कहीं भावुकता, सरसता, कौतूहल या प्रवाह दिखायी देता है। कहीं स्वाभाविक वस्तु-वर्णन और चरित्र-चित्रण है तो वह लव-कुश युद्ध में। रामचन्द्रिका का सब से श्रेष्ठ अंश इस युद्ध का वर्णन ही है।

३– केशव का चरित्र-चित्रण

प्रबन्ध काव्य में चरित्र-चित्रण सब से महत्वपूर्ण है। परन्तु केशव ने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। चरित्र-चित्रण केशव का उद्देश्य नहीं। जैसा कि ऊपर कह आये हैं रामचन्द्रिका में न तो चरित्रों की रेखाएँ ही स्पष्ट हैं और न व्यापार की कमी के कारण, उनका कोई विकास ही हम देखते हैं।

केशव के चरित्रों में से प्रधान-प्रधान चरित्रों का संक्षिप्त विवेचन नीचे किया जाता है। विवेचन में मुख्यतया वही बातें ली गई हैं, जो किसी अंश तक केशव के चरित्रों की विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

(१) राम—राम धीर वीर गम्भीर हैं। स्त्री होने के कारण ताड़का को मारते हुए उन्हें संकोच होता है। परशुराम के साथ उनकी बातचीत शिष्टतापूर्ण और विनय से युक्त है। पर जब परशुराम उनके गुरु की निंदा करने लगते हैं तो उन्हें क्रोध आ जाता है और वे परशुराम को लड़ने के लिये ललकार उठते हैं। पिता के वचन की रक्षा के लिये तुरन्त वन को चल देते हैं। वन जाते समय लक्ष्मण को अयोध्या में ही रहने के लिये समझाते हुये राम कहते हैं—

आइ भरत्थ कहा धौं करैं, जिय भाय गुनौ।
जौ दुख देइँ तौ लै उरगौ, यह बात सुनौ॥

आलोचकों का कथन है कि यह कहलाकर कवि ने राम के चरित्र-सौंदर्य को नष्ट कर दिया है, जिस भरत पर उनका सब से अधिक प्रेम है[1] उन्हीं के सम्बन्ध में उनका इस प्रकार सन्देह करना राम के चरित्र को गिराता है। हमारी सम्मति में यह कथन अर्थवाद मात्र है। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि राम भरत पर वास्तव में सन्देह करते रहे हैं पर यह कह कर वे लक्ष्मण को अयोध्या में रहने के लिये राजी करना चाहते हैं। लक्ष्मण को अयोध्या में रखना ही उनका यहाँ पर मुख्य उद्देश्य है।

केशव ने राम के बालि-बध का समर्थन नहीं किया है। उसका अनौचित्य उनने राम के मुख से स्वीकार कराया है—

यह सांटों लै कृष्णावतार।
तब ह्वैहौ तुम संसार पार॥

---

१ अरु जदपि अनुज तीन्यौं समान।
पै तदपि भरत भावत निदान॥ (रामचन्द्रिका १२।७५)

सीता के निर्वासन के समय राम का चरित्र अेक outocrat शासक का सा हो गया है।

(२) केशव के भरत में तुलसी के भरत की अपेक्षा कुछ कम गम्भीरता दिखाई पड़ती है। चित्रकूट में दशरथ के सम्बन्ध में केशव ने भरत के मुख से जो शब्द कहलाये हैं वे उनके अनुरूप नहीं हुअे। गंगा तट पर न उठने का संकल्प करके बैठ जाना दुराग्रह के निकट पहुँच जाता है। सीता का त्याग उन्हें बहुत खटकता है। वे राम से तर्क-वितर्क भी करते हैं पर राम

मेरी कछू अबहिं इच्छा यहै सो हेरि।
मो को हतौ बहुरि बात कही जो फेरि॥

कह कर उन्हें चुप कर देते हैं, लव-कुश-युद्ध में लक्ष्मण की मूर्च्छा पर वे कहते हैं।

पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता॥
दोस-विहीनहिं दोस लगावै।
सो, प्रभु, यह फल काहे न पावै॥

(३) केशव की सीता में कोई विशेष बात नहीं। हां,

श्रम तेऊ हरैं तिनको, कह केसव, चंचल चारु दृगांचल सों।

यह कथन उनकी मर्यादा के अनुकूल नहीं और खटकता है।

(४) कौशल्या का चरित्र उतना उदात्त नहीं जितना तुलसी का है। तुलसी की कौशल्या 'लोक-संग्रह का भाव रखते हुअे छाती पर पत्थर रख राम को वन जाने की आज्ञा देती है,' पर केशव की कौशल्या पुत्र प्रेम जनित विह्वलता से अभिभूत हो जाती हैं। इस विह्वलता के अतिरेक के

कारण उनके मुख से ऐसे वाक्य निकल पड़ते हैं जो साधारण अवस्था में वे कभी न निकालतीं। भाव के आवेश में ऐसा होना स्वभाविक है।

(५) कैकेयी का चरित्र मंथरा के प्रसंग को छोड़ देने से विकृत रूप में सामने आता है। राम को वन भेजने का कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। ऐसा जान पड़ता है कि कैकेयी को राम के-प्रति स्वाभाविक द्वेष रहा होगा या वह बिना कारण ही अकस्मात राम के विरुद्ध हो गयी।

(६) रावण की प्रधान विशेषता उसकी कूट-नीतिज्ञता है। अंगद-रावण-संवाद और रावण-बाण-संवाद दोनों में वह दिखायी पड़ती हैं। स्वयंवर-प्रसंग में उसके चरित्र में क्षुद्रता के भी दर्शन होते हैं। वह अहम्मन्य भी है। हठी ऐसा कि मंत्रियों की युक्तियुक्त मंत्रणा को भी बार बार तिरस्कृत करता है। उसका अहंकार एक बार नीचा देखता है जब वह राम के पास सन्धि-सन्देश लेकर दूत को भेजता है पर मन्दोदरी के सामने जब यह बात प्रकट हो जाती है तो उसका अहंकार फिर जाग उठता है। स्त्री के सामने कोई पुरुष होकर अपनी निर्बलता कैसे स्वीकार कर सकता है। राम इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को जानते थे इसलिये उनने दूत से कहा कि हमारा उत्तर रावण को मन्दोदरी की उपस्थिति में सुनाना।

(७) मन्दोदरी रावण के सीता-हरण को अनुचित समझ कर उसे बराबर समझाती है। पर अन्त में जब समस्त बन्धु-बांधवों के मारे जाने पर रावण-कृत सन्धि चर्चा की बात जानती है। तो उसका क्षत्रियत्व जाग उठता है और वह रावण को बुरी तरह फटकारती है—

तब सब कहि हारे, राम को दूत आयो।
अब समुझ परी जौ पुत्र भैया जुझायो॥

दसमुख, सुख जीजै, राम सों हौं लरौं यों।
हरि-हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों॥

(८) अंगद चतुर और अत्यन्त निडर है। रावण के दरबार के आतंक से वह तनिक भी प्रभावित नहीं होता। रावण की कूट चालों में भी वह नहीं आता। राम ने उसके पिता को मारा था इस बात को वह भूलता नहीं, पर बदला लेने के लिये रावण की सहायता उसे वांछनीय नहीं। वह अपने ही बल से बदला लेने की इच्छा रखता है और राज्याभिषेक के उपरान्त राम को लड़ने के लिये ललकारता है।

(९) हनुमान आदर्श सेवक हैं। उनमें वीरता के साथ चातुर्य का सुन्दर मेल दिखायी पड़ता है। सेवक की सब से बड़ी विशेषता यह है कि ओक कार्य को भेजा जाय और साथ में और भी अनेक कार्य कर आवे। हनुमान इसी प्रकार के सेवक हैं। राम कहते हैं—

गये ओक काज को अनेक करि आये हो।

सीता के परित्याग का दुःख हनुमान के हृदय में भी है। राम के आज्ञाकारी सेवक होने पर भी उनका हृदय सीता के साथ है। माता सीता के बिना वे अपना सब उत्साह और पराक्रम खो बैठे हैं। लव-कुश युद्ध के समय भरत उनसे युद्ध करने को कहते हैं—

हनुमन्त, दुरंत नदी अब नाखो।
रघुनाथ - सहोदर - जी अभिलाखो॥
तब जौं तुम सिंधुहिं नाँघि गये जू।
अब नाँघहु काहे न, भौन भये जू।

पर फिर भी हनुमान युद्धोत्साह नहीं दिखाते। वे उत्तर देते हैं —

सीता - पद सम्मुख हुते गयो सिंधु के पार।
विमुख भये क्यों जाहुँ तरि, सुनो भरत, यहि वार॥

और उसने युद्ध किया नहीं।

[१०] लव-कुश—दोनों बालक अद्भुत पराक्रमी हैं। उनका उत्साह, उनका साहस असीम है। युद्ध में उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सकता। जिसने शस्त्र उठाया उसीने प्राणों से हाथ धोया। राम, हनूमान और जाम्बवन्त यही तीन जीवित बचे। क्योंकि इनने युद्ध नहीं किया। कुश अधिक गम्भीर है, लव अधिक चञ्चल। लक्ष्मण, भरत और राम की बातों का उत्तर कुश देता है। उसके उत्तर उसकी गम्भीरता को सूचित करते हैं। उधर सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद आदि को लव उत्तर देता है जो बड़े ही कटु व्यंग से परिपूर्ण हैं।

अद्भुत पराक्रमी होने पर भी लव-कुश बालक ही हैं। केशव ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को नहीं भुलाया है। युद्ध के पश्चात् जब लव-कुश लौटते हैं तो योद्धाओं के सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण इकट्ठे कर ले जाते हैं। हनुमान और जाम्बवन्त को भी खेल के लिये, बाँध कर ले चलते हैं। उनका अद्भुत पराक्रम उनकी बालोचित वृत्ति को दबाकर नहीं रख सका।

४—केशव के संवाद

केशव ने रामचन्द्रिका में जिन सम्वादों की योजना की है उनमें वे सबसे अधिक सफल हुये हैं। ये सम्वाद नाटकीय शैली के हैं और

बहुत कुछ संस्कृत नाटकों के आधार पर लिखे गये हैं । उनमें पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यञ्जना भी सुन्दर है। उनमें खूब वाग्वैदग्ध्य पाया जाता है । व्यङ्ग की भी अच्छी बहार मिलती है। इस प्रकार उनसे काव्य में अच्छी सजीवता आ गयी है।

केशव ने सम्वाद वहीं रखे हैं जहाँ कूटनीति या राजनीतिक दांव-पेचों के चित्र खींचना या पात्रों की नोक-झोंक के दृश्य खड़े करने थे। जहाँ गम्भीर मनोवृत्तियों के चित्रण की आवश्यकता थी वहाँ वे सम्वादों को बचा गये हैं। तुलसी के सबसे सुन्दर सम्वाद अयोध्या कांड में हैं । केशव ने वहाँ जो संवाद रखे हैं वे नहीं के समान हैं।। केशव के सबसे सुन्दर संवाद हैं—रावण-बाण-संवाद, परशुराम प्रसङ्ग का संवाद, रावण-अङ्गद-संवाद तथा लव-कुश-प्रसङ्ग के संवाद। केशव का रावण-अङ्गद-संवाद तुलसी के रावण-अङ्गद-संवाद से अधिक उपयुक्त और सुन्दर बना है।

इन संवादों की भाषा में अच्छा प्रवाह पाया जाता है। अलङ्कारों की भर्ती न होने के कारण इनमें पर्याप्त स्वाभाविकता है।

रामचन्द्रिका के कुछ मुख्य संवाद ये हैं—

(१) दशरथ-विश्वामित्र-संवाद
(२) रावण-बाण-संवाद
(३) विश्वामित्र-जनक-संवाद
(४) परशुराम-वामदेव-संवाद
(५) राम-परशुराम-संवाद
(६) राम-सीता-संवाद
(७) भरत-कैकेयी-संवाद

(८) राम-भरत-संवाद

(९) रावण-सीता संवाद

(१०) रावण-हनुमान-संवाद

(११) रावण-मन्दोदरी आदि का संवाद

(१२) रावण-अङ्गद-संवाद

(१३) राम-भरत-संवाद [सीता-निर्वासन के समय]

(१४) लव-कुश प्रसङ्ग के संवाद

इन संवादों में कुछ छोटे और कुछ बड़े हैं। छोटे संवादों में से अधिकांश अच्छे बने हैं और अपने उद्देश्य की ठीक पूर्ति करते हैं। राम-भरत-संवाद में दशरथ के सम्बन्ध में भरत की उक्ति कुछ खटकती है। इसी प्रकार रावण-मन्दोदरी संवाद में मन्दोदरी की फटकार कुछ अधिक कठोर जान पड़ती है।

रावण-बाण-संवाद, राम-परशुराम संवाद और अङ्गद-रावण-संवाद काफी लम्बे संवाद हैं। ये अपनी परिमाण-सीमा से बहुत आगे बढ़ गये हैं और प्रबन्ध के अन्तर्भूत अङ्ग न मालूम हो कर स्वतन्त्र रचना से प्रतीत होने लगते हैं। रावण - बाण का संवाद २६ छन्दों में है और बिलकुल निरुद्देश्य है। जान पड़ता है कवि ने इनको विवाद दिखाने के लिये ही रखा है। इस तरह के विवादपूर्ण सम्वादों में हम प्रायः कहावत में आयी हुई बनियों की लड़ाई का सा स्वरूप देखते हैं। इनका अन्त भी सफल और स्वाभाविक नहीं हो पाया है। ये सम्वाद वास्तव में संस्कृत नाटकों से अनूदित हैं। नाटक में इनका वैसा अवसान खटकता नहीं पर रामचन्द्रिका नाटक नहीं प्रबन्ध-काव्य है।

केशव के ये सम्वाद जो कथा-प्रसङ्ग में उखड़े-उखड़े से प्रतीत होते हैं अपने स्वतन्त्र रूप में बड़े मनोरञ्जक और कौतूहलवर्धक हैं। रावण और वाण का बगलें झांकना भी स्वतन्त्र सम्वाद में मनोविनोद और चरित्राध्ययन की एक चीज है। केशव के सम्वादों में भी नाटकीय प्रभाव पूर्ण रूप से मौजूद रहता है। उनमें चटपटापन, चुलबुलापन, व्यंग और वाग्वैदग्ध्य के समस्त गुण अेक साथ दखाई देते हैं।

कुश-लव और राम की सेना के वीरों में होने वाले सन्वाद केशव के सर्वश्रेष्ठ संवाद हैं। प्रबन्ध के अन्दर वे अच्छी तरह खप जाते हैं। उनमें केशव ने संस्कृत का आधार नहीं लिया यह ध्यान रखने योग्य है। 'लव-कुश के वाक्य प्रायः छोटे छोटे, तथ्यदर्शी और कार्यक्षिप्रता के प्रेरक हैं। वे चरित्रचित्रण में भी सहायक होते हैं।

५—केशव के वर्णन

वर्णन के दो विभाग किये जा सकते हैं।

(१) पात्र-स्वरूप-वर्णन, और,

(२) परिस्थिति वर्णन।

पात्रों के स्वरूप का सजीव चित्रण रसानुभूति के लिअे अत्यन्त आवश्यक है, नाटक में यह काम अभिनेताओ के द्वारा हो जाता है। प्रबन्ध-काव्य में यह सुविधा नही होती अतः कवि का कर्तव्य हो जाता है कि पात्रो के रंग-रूप, आकार-प्रकार, आदि का अैसा व्यौरे वाला वर्णन करे कि उनकी मूर्ति साक्षात् खड़ी हुई सी प्रतीत होने लगे। केसव में पात्र-स्वरूप-चित्रण का प्रयास नहीं के बराबर है। केवल अेक ही दो

स्थानों पर उनने किसी अंश तक ऐसा प्रयास किया है। नीचे लिखे पद्य में परशुराम का कुछ ब्यौरा दिया गया है जिससे उनकी मूर्ति को किसी अंश तक हम प्रत्यक्ष करने में समर्थ होते हैं—

कुस-मुद्रिका समिधा स्रुवा कुस औ कमंडलु को लिये।
कटि मूल स्रोननि तर्कसी, भृगु-लात सी दरसै हिये॥
धनु-बान तिच्छ कुठार, केशव, मेखला मृगचर्म स्यों।
रघुबीर, को यह देखियै रस वीर सात्विक धर्म स्यों?

इसी प्रकार वृद्धा अनसूया का यह वर्णन भी उनकी वृद्धावस्था को प्रत्यक्ष करने में सहायक होते हैं—

सिर सेत विराजै, कीरति राजै जनु केसव तप-बल की।
तनु बलित-पलित, जनु सकल बासना निकरि गयी थल-थल की॥
कांपति सुभ-ग्रीवा सब-अँग सीवां, देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेसति, या जग में कछु नाहीं॥

रूप-वर्णन केशव ने कई स्थानों पर किया है पर उनमें कवि का ध्यान आकृति का ब्यौरा देने की ओर नहीं किन्तु अलंकारयोजना पर है[1] इसी कारण उनसे आकृति का चित्र खड़ा नहीं होता।

---

१ उदाहरणार्थ देखिये—

(क) राम का नखसिख तथा सीता और उसकी सखियों का रूप-वर्णन। (प्रकाश ६)

(ख) शुक द्वारा सीता की सखी का नख-सिख वर्णन। (प्रकाश २१)

(ग) कविप्रिया के पन्द्रहवें प्रभाव में नखशिख।

(२) उद्दीपन रूप में अर्थात् जब प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यापारों का उपयोग किसी भाव को उद्दीप्त करने के लिये किया जाय।

(३) प्रस्तुत या आलम्बन रूप में अर्थात् जब प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यापारों का स्वतन्त्र वर्णन हो।

अप्रस्तुत रूप में कवि लोग कमल, चन्द्र, लता, पल्लव, खञ्जन, भ्रमर, मीन आदि प्राकृतिक वस्तुओं को लाते रहे हैं। केशव भी इन्हें लाये हैं। केशव में ऐसे पदार्थों की संख्या अपेक्षाकृत कम मिलेगी। अधिकांश में कमल, चन्द्र आदि अत्यन्त प्रसिद्ध उपमान ही लाये गये हैं जिनका कविजन बराबर प्रयोग करते हैं। नवीन उपमान केशव में कम मिलेंगे। नीचे लिखे उदाहरणों में कवि द्वारा लाये हुये अप्रस्तुत सुन्दर और भावपूर्ण हुये हैं।

काम ही की दुलही सी का के कुल उलही सी।
लहलही ललित लता सी लोल सोहियै ॥

इस पंक्ति में ऐसा प्रतीत होता है कि लता को उपमान रूप में लाने मात्र ही से कवि सन्तुष्ट नहीं है। लता के प्रति उसके हृदय में जो अनुराग है उसका भी संकेत वह देना चाहता है।

धरे एक बेनी मिलि मैल सारी।
मृनाली मनो पंक तें काढ़ि डारी ॥

यहाँ सीता की बाह्य और आभ्यन्तर दोनों दशाओं के लिये मृणाली उपमान कितना उपयुक्त और मार्मिक है।

उद्दीपन रूप में, और स्वतन्त्र रूप से, प्रकृति वर्णन करने के अनेक अवसर केशव को मिले। पर बहुत कम स्थान ऐसे हैं जहाँ का वर्णन भावपूर्ण हो। अधिकांश वर्णन अलंकार-मय हैं जिनमें कवि का ध्यान

प्रकृति की अपेक्षा अलंकारों की ओर अधिक जान पड़ता है। फिर भी कुछ स्थानों में प्राकृतिक दृश्यों के जो चित्र अंकित किये हैं वे प्रभावशाली हुए हैं, उदाहरणार्थ रामचन्द्रिका के तेरहवें प्रकाश में राम द्वारा किया हुआ यह वर्षा-वर्णन—

आस पास तम की छवि छायी।
राति-दिवस कछु जानि न जाई॥
मंद मंद धुनि सों घन गाजैं।
तूर तार जनु आवझ बाजैं॥
ठौर ठौर चपला चमकै यों।
इन्द्रकोल तिय नाचति है ज्यों॥
सोहैं घन स्यामल घोर घने।
मोहैं तिन में बक-पांति मनै॥
संखावलि पी बहुधा जल सों।
मानो तिन को उगिलैं बल सों॥
सोभा अति सक्र-सरासन में।
नाना दुति दीसति है घन में॥
रतनावलि सी दिवि-द्वार भनो।
वरखागम बांधिय देव मनो॥

भौहैं सुरचाप, चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराइ जोति तड़ित रलायी है।

दूर करी सुख दुख सुखमा ससी की, नैन
अमल, कमल-दल दलित निकाई है ॥
केसौदास, प्रबल क-रेनुका गमनहर,
मुकुत सु हंसक-सबद सुखदाय हैं।
अंबर-वलित, मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका की बरखा हरखि हिय आयी है ॥

अंतिम पद्य में श्लेष अलंकार होने पर भी कवि को कष्ट-कल्पना नहीं करनी पड़ी है और वर्षा के कुछ सुन्दर चित्रों को उपस्थित किया गया है।

कवि-प्रिया में बारहमासे का वर्णन बहुत अच्छा बना है। उदाहरण के लिये भादों का वर्णन यहाँ दिया जाता है—

घोरत घन चहुँ ओर घोस-निरघोसहिं मंडहिं।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारा जल छंड़हिं ॥
झिल्ली गन झंकार पवन झुकिझुकि झकझोरत।
बाघ सिंघ गुंजरत पुंज कुंजर तरु तोरत ॥
निसि दिन-विसेस निस्सेस मिटि, जात सु, ओली ओड़िये।
निज देस पियूस, बिदेस बिस, भादों भवन न छोड़िये ॥

इस वर्णन में ध्वनि-सौंदर्य भाव के कैसा अनुकूल हुआ है।

रामचन्द्रिका के तीसरे प्रकाश में प्रातःकाल का यह वर्णन अच्छा हुआ है—

गगन उदित रवि अनन्त सुक्रादिक जोतिवन्त
छन-छन छवि-छीन होत लीन पीन तारे।

मानहुँ परदेस देस ब्रह्मदोस के प्रवेस
ठौर-ठौर तें विलात जात भूप भारे ।

अमल कमल तजि अमोल मधुप लोल टोल-टोल
वैठत उड़ि करि-कपोल दान - मान - कारी ।
मानहु मुनि-जन ग्यान-वद्ध छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध
सेवत गिरि-गन प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धि - धारी ॥
तरनि-किरन उदित भयी दीप-जोति मलिन गयी
सदय हृदय वोध उदय ज्यों कुबुद्धि नासै ।
चक्रवाक निकट गयी चकई मन मुदित भयी
जैसें निज जोति पाइ जीव जोति भासै ॥

अरुन तरनि के विकास अेक दोइ उडु अकास
कलि के से सन्त ईस दिसन अंत राखे ।
दीखत आनन्द-कन्द निसि वन दुति-हीन चंद
ज्यों प्रवीन जुवति-हीन पुरुख दीन भाखै ॥
निसिचर चमके विलास हास होत है निरास
सूर के प्रकास त्रास नासत तम भारे ।
फूलत सुभ सकल गात असुभ सैल से विलात
आवत ज्यों सुखद राम नाम मुख तिहारे ॥

इसी प्रकाश में वसन्त का यह वर्णन भी भावपूर्ण है—

बौरे रसाल - कुल कोमल केलि-काल ।
मानो अनंग-ध्वज राजत श्री-विसाल ॥
फूली लवंग लवली ललिता विलोल ।
भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल ॥

बोलैं सु-हँस सुक कोकिल केकि-राज।
मानो बसंत-भट बोलत जुद्ध काज॥
सोहै पराग चहुँ भाग उड़ै सुगंध।
जा तें विदेस विरही ; जन होत अंध॥
पालास - माल बिन पत्र बिराजमान।
मानो बसंत दिय कामहि अग्निवान॥

फूले पलास विलास-थली बहु, केसवदास, प्रकासन थोरे।
सेस असेस मुखानल की जनु ज्वाल विसाल चली दिवि ओरे॥
किंसुक - श्रीसुक - तुंडन की रुचि राचै रसातल में चित चोरे।
चोंचन चाँपि चहूँ दिसि डोलत चारु चकोर अँगारनि भोरे॥

उक्त वर्णन परिगणन - शैली के हैं जिसमें वर्ण्य दृश्य से सम्बन्ध रखने वाली विविध वस्तुओं के नाम गिना मात्र दिये जाते हैं, दृश्य की सब वस्तुओं का संश्लिष्ट चित्र खड़ा करने का प्रयत्न नहीं होता।

रामचन्द्रिका के ३२ वें प्रकाश में वाटिका का वर्णन है पर वह अलङ्कार-प्रधान है। कवि का ध्यान वाटिका के विविध दृश्यों की अपेक्षा अलङ्कार-योजना की ओर अधिक है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत के आगे बिलकुल गौण हो गये। ऐसे स्थानों में केवल अलङ्कार का सौंदर्य ही दृष्टिगत होता है।

तीसरे प्रकाश में विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन इस प्रकार किया है—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर॥
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी सुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं॥

सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त-मयूर-गन।
अति प्रफुल्लित फलित रहै सदा, केसौदास विचित्र वन॥

वर्णन सुन्दर है, नाद-सौंदर्य भी अच्छा है पर देश-विरोध दोष है।

एला, लवंग, सुपारी आदि के पेड़ ठेठ हिमालय के हैं। बिहार में वे कहाँ? यहाँ केशव ने संस्कृत के कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थों का अन्धाधुन्ध अनुसरण किया है जिनके अनुसार आश्रम के वर्णन में इस प्रकार के पेड़ों का वर्णन होना चाहिये। कम से कम ऐसे स्थानों पर कवि अपनी आँख खोलकर चलता तो अच्छा होता।

कहीं-कहीं पर तो कवि प्रकृति-वर्णन करते हुये शब्दों का खिलवाड़ सा कर चला है जो बहुत खटकता है। प्राकृतिक दृश्यों के लिये कवि ऐसे अप्रस्तुत लाया है जिनका उनके साथ कोई साम्य नहीं। केवल श्लेष के आधार पर समता सूचित की गयी है। जैसे ११ वें प्रकाश में दण्डकारण्य का वर्णन (उद्धरण तथा अन्य उदाहरण अलङ्कार-प्रकरण में देखिये)।

७—केशव की भाषा

केशव की रचनाओं की भाषा ब्रज भाषा है। वे बुन्देलखंड के निवासी थे अतः बुन्देलखंडी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी कई जगह मिलता है।[1] संस्कृत के विद्वान होने के कारण उनकी भाषा पर

१ उदाहरणार्थ-गौरमदाइन, ठपदि, गेंडुआ, स्यों, मरूकरि, वेगि दै इत्यादि।

केसौदास, दिन-राति केतकी की भावै भाँति,
जिय में बसति जाति, नैनन में नलिनी।
माधवी को पियै मद, सूझत न अंध कहूँ,
सेवती सेवन कही सेयी गंध-फलिनी।
और हौं कहति बात, कान्ह, काहे को लजात,
ऐसे तौ खिस्याइ सो, जौ होई मन मलिनी।
देखहुँ धौं, प्रानपति, निलज अली की गति,
मालति सों मिल्यो चाहै साथ लीन्हे अलिनी॥

हरित-हरित हार हेरत हियो हिरात,
हारी हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं।
वनमाली व्रज पर बरखत बन-माली,
वनमाली दूर, दुख केसव कैसे सहौं।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमल नैन,
भयी हौं कमल-नैन, और हौं कहा कहौं।
आप-घने घन स्याम घन ही से होत घन-
स्यामनि के द्यौस घनस्याम बिन क्यों रहौं।

संवादों की भाषा खूब चलती हुई है।

दै दधि।
दीन्हो उधार हो, केसव ?
दानि कहा जब मोल लै खैहैं।
दीने बिना जु गयी हो गयी।
न गयी न गयी, घर ही फिरि जैहैं।
गो हितु ? बैर कियो ?
कब हो हितु ? बैर किये बर नीकी ही रैहैं।

वैरु कै गोरस वेचहुगी, अहो ?
वेच्यो न वेच्यो, तो ढारि न दैहैं ॥

रामचन्द्रिका में कवि ने जहाँ वीरता, प्रताप, आतङ्क का वर्णन किया है वहाँ भाषा में प्रवाह के साथ ओज गुण भी खूब मिलता है।

कोदंड हाथ, रघुनाथ, सँभारि लीजै।
भागे सबै समर जूथप, द्रस्टि दीजै ॥
वेटा वलिस्ठ खर को मकराक्ष आयो।
सँघार - काल जनु काल कराल धायो ॥
सुग्रीव अंगद वली हनुमंत रोक्यो।
रोक्यो रहो न रघुवीर जहीं विलोक्यो ॥
मारयो विभीखन, गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लच्छमन-कंठ मेली ॥

मधुर और वीररस के अनुपयुक्त कही जाने वाली ब्रजभाषा में केशव ओज गुण भरने में खूब सफल हुये हैं।

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी केशव की भाषा में मिलता है।

कहावतें

[१] खारक दाख खवाइ मरौ फिन,ऊंटहिं ऊँटकटारहि भावै।
[२] सुंदर स्याम, विराम करो कछू, आम की साधन आमिली पूजै ।
[३] लालच हाथ रहै, ब्रजनाथ, पै प्यास बुझाइ न ओस के चाटे।

[४] स्वारथ ही हित है सबके,परदेस गये हरि नींद गयी री।

[५] हौ सिखवौं, अपने सपनेहुँ तो आवत लच्छि किंवार न दीजै।

[६] देखिये जू आँख ताहि साख की कहा चली ?

[७] कहि केसव, आपनी जाँघ उघारि कै आपही लाजनि को मरई ?

[८] तिहि पैंडे कहा चलिये कबहूं, जिहिं काँटो लगै पग पीर दुखौंही ।

[९] राम हू की हरी रावन बाम, चहूँ जुग अेक अदृस्ट बली है।

केशव की कुछ सूक्तियाँ कहावतें बनने के योग्य हैं—

[१] पाइय क्यों परमेसुर को गति, पेटहु की गति पाई न जाई।

[२] आप गिरा गुन जो सिखवै, तऊ काक न कोकिल ज्यों कल कूजै।

[३] सोने सिंगारहु, सोंधे सँवारहु, पीतर की पितराई न जाई।

[४] विधि की गति लोपि न जाइ अलोपित, लै मनि सीस भुजंग दयी।

[५] पानी की कहानी, रानी, प्यास क्यों बुझाइ है ?

[६] नाकुल को अवलोकि कै, केशव, व्यालन ज्यों मन को न पठावो।

[७] मन हाथ सदा जिनके, तिनके वन ही घर है, घर ही वन है।

[८] चेत रे चेत अजौं चित अन्तर, अन्तकलोक अकेलोई जैहै।

मुहावरे

[१] सब ही मिलि द्वैज को चन्द करी।

[२] ईटनि सों टूटी ईठी, जाके, सोक की अंगीठी
उठी जा के उर में, सो कैसे हँसि डीठिहै॥

[३] आये तें आवैगी, आंखिन आगे ही डोलिहै, मानहु मोल लयी है।

[४] जो रिसियाइ तो जैयै मनावन, तातो है दूध सिराइ न पीजै।

[५] एंड़ सो एंड़ाइ जिमि, अंचल उड़ात,
ओली। ओढ़त हौं; काहू की जो दीठि उड़ि लागिहै॥

[६] माइ! मिले मन का करिहौ, मुँह ही के मिले ते कियो मन मैलो।

[७] व्रज-भूखन नैनहिं भूख है जाकी।

[८] पी-चित की चितसारी चढ़ी चित की पुतरी भई कोलौं रहौंगी।

[९] आंखिन सों बांधे आनि काहू की न भागी भूख।
पानी की कहानी, रानी, प्यास क्यों बुझाइ है ?

[१०] तुम ब्रजनाथ, हाथ कौन के बिकाने हौ ?

[११] भाल के लाल में बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीन्हे।

[१२] दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहू देखौ[1]।

[१३] हँसि बोलत ही जु हँसै सब,
केशव, लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत घैरु चलै,
मन आनत ही मनमत्थ जगै।
सखि, तू जो कही सो हुती मन मेरेहु,
जानि यहै न हियो उमगै।
हरि त्यों टुक डीठि पसारत ही
अँगुरीन पसारन लोक लगै॥

---

१ आलोचकों ने इस मुहावरे पर टीका-टिप्पणी की है। श्री बड़-थ्वाल का कहना है कि 'कष्ट उठाना' मुहावरा है पर 'दुख देखना' अवसर के अनुसार शिष्ट उचित नहीं मालूम पड़ता। श्री कृष्णशंकर शुक्ल लिखते हैं कि 'दुख देखने' का अर्थ अधिक बुरे भाव में लिया जाता है, साधारण कष्ट उठाने के अर्थ में नहीं। हमारी सम्मति में परिहास के लिये ही कवि ने जनक से इस द्वयर्थक मुहावरे का प्रयोग करवाया है। सम्बन्धियों में परिहास-वचन प्रथानुमोदित है।

[१४] कौन के न प्रीति, को न प्रीतमहिं बिछुरति,
तेरे ही अनोखे पतिव्रत गाइयतु है।
जतन करे हीं भले आवै हाथ, केसौदास,
और कहा पच्छिन के पाछे धाइयतु है॥
उठि चलो, जौ न मानै, काहू की बलाइ जानै,
मान सों जो पहिचानै, ताके आइयतु है।
या के तो है, आजुहीं मिलौं कि मर जावौं माई,
आगि लागे मेरी वीर मेह पाइयतु है॥

कहा गया है कि केशव ने लक्षणा का विशेष सहारा नहीं लिया है। उनकी भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों की कमी है। रामचन्द्रिका को ध्यान में रखते हुये इस कथन में बहुत-कुछ तथ्य का अंश है पर रसिकप्रिया में लाक्षणिक प्रयोग काफी मिलेंगे।

[१] जलज से लोचन जलद ह्वै आये री
[२] मोहन को मन तेरे नैन छू-छू जात हैं
[३] चित चकचौंधै मेरे मदन गोपाल को
[४] मुँह ही के मिले ते कियो मन मैलो
[५] होत है आंखिन बीच अखारो
[६] तिहारी बिलोकनि में बिस बीस बिसे है
[७] चहुँ दिसि तें अँगुरी पसरी।
[८] सिगरेई सुगंध बिदा करि दीने।
[९ [सिगरेई सिंगार अंगार ह्वै लागे।
[१०] सखि, आजु गयी हुती गोकुल हौं, सब हीं मिलि द्वैज को चंद करी।

भावपूर्ण व्यञ्जना के लिये यह पद्य लीजिये—

(१) कौन के सुत ? वालि के; वह कौन वाली, न जानियो ।
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानियो ॥
है कहाँ वह ? वीर अंगद देव-लोक बताइयो ।
क्यों गयो ? रघुनाथ वान - विमान बैठ सिधाइयो ॥

इसमे यह व्यंग्यार्थ निकलता है कि राम का विरोध करने से तेरी भी वैसी दशा होगी ।

च्युत संस्कृति (व्याकरण-विरोध), अक्रम, न्यूनपद, अधिकपद, पुनरुक्त आदि दोष केशव की भाषा में, विशेषकर रामचन्द्रिका की भाषा में, पाये जाते हैं । कुछ उदाहरण लीजिये—

व्याकरण-विरोध

[१] पीछे मघवा मोहि साप दयी (दयो)
[२] करैं साधना एक परलोक ही को (की)
[३] वान हमारेन के तनत्रान विचारि-विचारि विरंचि करे हैं
(हमारे वानन के)
[४] अंगद रच्छा रघुपति कीन्हो (कीन्ही)
[५] लखो गौरिके वाटिका की प्रभा को ('देखिकै' यहाँ प्रभा के साथ अन्वित नहीं होता)

अक्रम

[१] रानदेहु जौ वाकी सिया को ।
[२] श्मशानुसी भूमि अवानगी करौं ।

न्यूनपद

[१] पानी पावक पवन प्रभु ज्यौं असाधु त्यौं साधु।

अधिकपद

[१] उठि रावन गो मरीच जहाँ मुनि।

पुनरुक्त

'सोभना' और उसके पर्यायवाची शब्दों की केशव ने बहुत अधिक पुनरुक्ति की है। शायद ही कोई अैसा पृष्ठ निकले जिसमें वे एक-दो बार न आ गये हों। कहीं कहीं तो अेक ही छन्द में चार-चार बार उनका प्रयोग मिलेगा अर्थात् प्रत्येक चरण में। इसी प्रकार जानिये, मानिये, देखिये, लेखिये, बरनिये, बखानिये आदि भी न जाने कितनी बार आये हैं।

विदेशी शब्द केशव की भाषा में बहुत कम मिलते हैं। वे संस्कृत के पण्डित थे अतः यह स्वाभाविक ही है। फिर भी वे दरबारी कवि थे—अैसे दरबार के जो मुगल साम्राज्य के अधीनस्थ था—और दिल्ली दरबार और उसके कर्मचारियों से उनका पर्याप्त सम्पर्क रहा अतः अरबी-फारसी के शब्द कहीं-कहीं आ ही गये हैं। कुछ अैसे शब्द ये हैं—

जहाज, जहान, जामा, सोर, तखत, बकसीस, दमामे, दरबार, दिवान, जमाति।[1]

---

१ श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' ग्रन्थ में लिखा है कि 'केशवदास जी संस्कृत के पंडित थे। ऐसी अवस्था में उनका संस्कृत के तत्सम शब्दों को शुद्ध रूप में लिखने के लिअे

८—केशव के अलंकार

केशव अलंकार-वादी कवि थे। काव्य में अलंकारों को वे प्रधान स्थान देते थे। उनके अनुसार अलंकार के बिना कविता हो ही नहीं सकती। अलंकार-हीनता को उन्होंने काव्य के दोषों में स्थान दिया है। रसों को भी केशव ने अलंकारों के अन्तर्गत ही गिना है।

केशव में अलंकारों के लिये अत्यन्त आग्रह दिखाई पड़ता है१। अनेक स्थानों पर तो उन्होंने अलंकारों का जमघट लगा दिया है। एक-एक पद्य में तीन-तीन चार-चार अलंकारों का मिलना कोई बड़ी बात नहीं। उदाहरणार्थ ये पद्य लीजिये—

(१) विधि के समान है विमानीकृत राजहंस
विविध विबुध-युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति, सातों दीप दीपियत,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है॥

सन्देह रहना स्वाभाविक है। वे अपनी रचनाओं में यथाशक्ति संस्कृत के तत्सम शब्दों का शुद्ध रूप में लिखना ही पसन्द करते हैं। उनका यह कथन ठीक नहीं है। हस्तलिखित प्रतियों में अन्याय कवियों के समान तद्भव रूप ही प्रायः मिलते हैं। केशव के मुद्रित संस्करणों में जो तत्सम रूप मिलते हैं उनका कारण यह है कि वे संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस आदि के छपे संस्करणों पर से तय्यार किये गये हैं जिनको इन प्रेसों ने पंडितों द्वारा शुद्ध करवा कर छापा था। तुलसी के रामचरितमानस, सूरसागर आदि अनेक ग्रन्थों की दुर्दशा भी इन प्रेसों के द्वारा इसी प्रकार हुई।

सागर उजागर की बहु वाहिनी को पति
छनदान प्रिय कैधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दसरथ
भगीरथ-पथ-गामी गंगा कैसो जल है॥

इसमें अनुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, शब्दश्लेष, अर्थश्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह और उल्लेख अनेक ही साथ मिलेंगे।

(२) चहुँ भाग बाग-वन, मानहुँ सघन घन,
सोभा की सी साला हंस-माला सी सरित-वर।
ऊँचे-ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची, जनु
कौसिक की कीन्ही गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निंदत नरिंद और
घर-घर देखियत देवता से नारि-नर।
केसौदास, त्रास जहाँ केवल अदृस्ट ही को,
वारियै नगर और ओरछा नगर पर॥

यहाँ अनुप्रास, लाटानुप्रास, वीप्सा, उत्प्रेक्षा, उपमा, परिसंख्या आदि को एकत्र देख सकते हैं।

(४) पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनु मंद।
चंद बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिन जामिनि चंद॥

इसमें उपमा, विनोक्ति और यथासंख्य तीनों विद्यमान हैं।

(३) किन्नर हौ नर-रूप बिचच्छन,
जच्छ कि सुच्छ सरीरनि सोहौ।
चित्त-चकोर के चंद किधौं,
मृग-लोचन-चारु-विमाननि रोहौ॥

अंग धरे कि अनंग हो, केसव,
अंगी अनेकन के मन मोहौ।
वीर, जटानि धरे धनु-बान,
लिये बनिता, बन में तुम को हौ?

इस उदाहरण में अनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक, व्यतिरेक और संदेह अलंकार हैं।

रामचंद्रिका में तो केशव के पात्र भी आलंकारिक हैं। अयोध्या में राम जब हाथी पर चढ़ कर निकलते हैं तो नगर-नारियाँ उनका अलंकारमय वर्णन कर चलती हैं। वन जाते हुए राम-लक्ष्मण और सीता को देख कर मार्ग की स्त्रियाँ उनका जो वर्णन करती हैं उसमें अलंकारों का ही कौतुक देखने को मिलता है। अलंकारों का इतना अधिक आग्रह खटकने लगता है।

रसिकप्रिया के पद्यों में कवि का ध्यान अलंकारों की ओर अधिक नहीं है। जो अलंकार आये हैं संख्या में कम हैं और प्रायः सभी जगह स्वाभाविकता लिये हुये हैं। कविप्रिया में भी अलंकार खूब हैं पर वहाँ भी वे खटकते नहीं क्योंकि वह एक तो मुक्तक पद्य हैं और दूसरे उदाहरण-रूप में ही लिखे गये हैं। रामचंद्रिका में अनेक स्थानों पर अलंकार खटकने लगते हैं। कई पद्यों में तो ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने उनकी रचना अलंकारिक कविता कर सकने की अपनी योग्यता दिखाने के लिये ही की है। इस अत्यधिक अलंकार-प्रेम के कारण अनेक वर्णन अनावश्यक विस्तृत हो गये हैं जिससे प्रबंध-काव्य को हानि पहुँची है।

साहित्य का कार्य है भाव के उत्कर्ष को व्यंजित करने में

सहायक होना अथवा वस्तुओं के रूप, गुण, तथा क्रिया का अधिक स्पष्टतया अनुभव करने में सहायक होना। वस्तुओं के रूप-गुण के स्पष्टीकरण के लिये प्रायः सादृश्य-मूलक अलंकार काम में लाये जाते हैं। सादृश्य-मूलक अलंकारों में प्रस्तुत को स्पष्ट करने के लिये अप्रस्तुत की योजना की जाती है। योजित अप्रस्तुत ऐसा होना चाहिये–जो वही भाव उत्पन्न करे जो प्रस्तुत करता है।

केशव के अप्रस्तुतों में प्रायः ये गुण पाये जाते हैं, पर सर्वत्र नहीं। कहीं-कहीं, विशेषतया रामचन्द्रिका में कई जगहों पर ऐसे अलंकार भी आये हैं जो न तो भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में ही सहायक होते हैं और न वस्तुओं के रूप आदि के स्पष्टीकरण में ही। वे केवल चमत्कार-विधायक होकर रह जाते हैं।

केशव में कल्पना की उड़ान खूब पायी जाती है। अपने अलंकार विधान में उनने कहीं-कहीं खूब दूर की उड़ानें भरी हैं।

केशव के मुख्य अलंकार उत्प्रेक्षा और श्लेष हैं। उत्प्रेक्षा का प्रयोग उनने बहुत किया है। जहाँ कोई वर्णन आया केशव उत्प्रेक्षा लिये सदा तय्यार हैं। कभी-कभी तो उन पर ऐसी भूत चढ़ जाती है कि एक ही बात के लिए उत्प्रेक्षा पर उत्प्रेक्षा करते चले जाते हैं। ऐसे स्थानों पर वह प्रायः सन्देह के साथ मिल कर आया है।

श्लेष भी केशव को बहुत प्रिय है। प्रायः सभी अलंकारों के साथ उनने श्लेष का मिश्रण किया है। बिना श्लेष के मानो केशव अलंकार-योजना कर ही नहीं सकते। दो-दो अर्थ वाला श्लेष तो जगह-जगह मिलेगा ही, पर केशव ने ऐसे पद्य भी लिखे हैं जिनके

तीन-तीन, चार-चार, और पाँच-पाँच तक अर्थ निकलते हैं।

एकाध स्थानों को छोड़ कर उनके श्लेष क्लिष्ट कल्पना से विमुक्त और सरल, सुबोध, एवं स्वाभाविक हैं।

उत्प्रेक्षा और श्लेष के पश्चात् केशव का प्रिय अलंकार संदेह है। परिसंख्या, विरोधाभास और यमक के प्रति भी आकर्षण है। सांग रूपक भी कहीं-कहीं उनने अच्छे कहे हैं। वैसे सभी अलंकार वे काम में लाये हैं। परिसंख्या अलंकार वाले पदों के भाव प्रायः बाण की कादंबरी से अनुवादित हैं।

उत्प्रेक्षा—

(१) धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी॥

(२) फूलि उठ्यो मन ज्यों निधि पायो।
मानहुँ अंध सुदीठि सुहायो॥

(३) मातु सबै मिलिबे कहँ धायीं।
ज्यों सुत को सुरभी सु-लवायीं॥

(४) उछले जल उच्च अकास चढ़े।
जल ओर दिसा-विदिसानि मढ़े॥
जनु सिंधु अकास-नदी अरिकै।
बहु भाँति मनावत पाँ परिकै॥

(५) फूल सिराजति गोपथनु छमना। जनु कुंज-कुटी महँ मोरैं।

(६) जमुना को जल मानो केलि के प्रवाह पर,
केसौदास, सोन-सीप निसा को सुहाग है।

सोभन सरीर पर कुंकुम विलेपन कै,
स्यामल दुकूल झीन झलकत झाईं है ॥

(७) वहु वायु वस वारिद वहोरहि अरुझि दामिनि-दुति मनो ।

(९) काँपति सुभ ग्रीवा सब अंग सींवा देखत चित्त भुलाहीं ।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेसति, या जग में कछु नाहीं ।

(१०) अंगद रावन को मुकुट लै करि उड़यो सुजान ।
मनो चल्यो जमलोक को दससिर को प्रस्थान ॥

हेतूत्प्रेक्षा—

(१) लगि सेतु जहां-तहँ सोभ गहे ।
सरितानि के फेरि प्रवाह वहे ॥
पति देवनदी-रति देखि भली ।
पितु के घर को जनु रूसि चलीं ॥

(२) सोवत सीतानाथ के भृगुमुनि दीन्ही लात ।
भृगुकुल-पति की गति हरी मनो सुमिरि वह बात ॥

(३) रमनी-मुख-मंडल निरखि राका-रमन लजाई ।
जलद जलधि सिव सूरमें राखत बदन छिपाई ॥

(४) अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रबि भगवंत ।
यहै जान अंतर कियो मानहु मही अनंत ॥

फलोत्प्रेक्षा—

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जल हूं थल छायी ।
दुक्ख निवेदन को भव-भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधायी ॥

सन्देह—

( ) मेरे विजोग के तेज तची
किधौं केसव काहू के प्रेम पगी है।

(२) मेह कि हैं सखि आंसू?, उसाँसनि
साथ निसा सु विसासनी वाढ़ी॥

भ्रान्तिमान—

कहूँ हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरैं।
चुनैं ओस के बुंद मुक्तानि भोरैं॥

परिसंख्या—

(१) अति चंचल जहं चलदलै, बिधवा बनी न नारि।

(२) तिथि ही को छय होत है रामचंद्र के राज॥

(३) आंखिन अछत अंध नारिकेर, कृस कटि,
ऐसो राज राजै राम राजीव-नयन को।

विशेष—संकलन में रामचंद्रिका के राम-राज्य-वर्णन के पद्य देखिये।

श्लेष—

(१) ते न नगरि, ते न नागरी, प्रतिपद हंसक-हीन।
जलज-हार सोभित न जहं, प्रकट पयोधर पीन॥

विशेष—श्लेष अलंकार केशव में जगह-जगह मिलेगा। अनेक स्थानों में वह अन्यान्य अलंकारों, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह, परिसंख्या आदि के साथ मिला हुआ आया है।

श्लेष और रूपक—

(१) सोक की आगि लगी परिपूरन
आइ गये घनस्याम विहाने।
जानकि के जनकादिक के
सब फूलि उठे तरु पुन्य पुराने॥

(२) चढ़्यो गगन-तरु धाइ दिनकर-बानर अरुन, मुख।
कीन्हो झुकि झहराइ सकल तारका-कुसुम बिनु॥

(३) जेहि जस-परिमल मत्त चंचरीक-चारन फिरत।
दिसि-बिदिसन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप॥

(४) राज-राज - दिग - बाम भाल-लाल लोभी सदा।
अति प्रसिद्ध जग नाम कासमीर को तिलक यह॥

(५) नृप-माणिक्य सुदेस दच्छिन-तिय जिय भावतो।
कटि-तट सुपट सुबेस कल कांची सुभ मंडई॥

अपह्नुति—

(१) उड़त पराग न चित्त उड़ावत।
भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत॥

(२) धनु है यह गौरमदाइन नांही।
जल-जाल बहैं सर-जाल वृथा ही॥

(३) भट, चातक-दादुर-मोर न, बोलैं।
चपला चमकै न फिरैं खग खोलैं॥

(४) सीता के पद-पदुम को नूपुर पट जनि जानु।
मनो करथो सुग्रीव घर राजश्री प्रस्थानु॥

मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजति मिस मोहन।

सहोक्ति और अक्रमातिशयोक्ति—

(१) भुव-भारहिं संजुत राकस को
दल जाइ रसातल सों अनुराग्यो।
जग में जय-सब्द समेतहि केसव,
राज्य बिभीखन के सिर जाग्यो॥
मय-दानव-नंदिनि के सुख सों
मिलिकै सिय के हिय को दुख भाग्यो॥
सुर-दुंदुभि-सीस गजा सर राम को
रावण के सिर, साथहि लाग्यो॥

(२) ऐसे में काहू को नाम लखो,
कहि कैसेधौं आइ गयो ब्रज-नाथहि।
आतुर ह्वै उन आंखिन तें
अँसुवा निकसे अखरानि के साथहि॥

(३) मेह कि हैं सखि आंसू? उसांसनि
साथ निसा जू बिसासनी बाढ़ी।

रूपकातिशयोक्ति—

संकलन के छंद देखिये।

अतिशयोक्ति—

(१) चलिहै क्यों चंदमुखी कुचन के भार भये।
कचन के भार तो लचकि लंक जाति है॥
(२) सूर-तुरंगन के उरभैं पग तुंग पताकनि की पट-साजनि।

उपमा –

(१) जहां तहां ऊपर पताल-पय आइ जात
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है ॥

(२) पतनी पति विनु दीन अति पति पतनी विनु मंद ।
चंद विना ज्यों जामिनी ज्यों बिनु जामिनि चंद ॥

(३) सहज सुगंधि सरीर की दिस-विदिसन अवगाहि ।
दूती ज्यों आयी लिये केसव सूपनखाहि ॥

(४) मारि भगाइ दिये सिगरे यों ।
मनमथ के सर ज्ञान घने ज्यों ॥

(५) यों सियरी खिनहूं, खिन ताती है,
ज्यों बदलै बदरान की छाहीं ।

(६) लागै न वार, मृनाल के तार ज्यों
टूटैगी, लाल, हमैं तुम ईठी ।

(७) केसव, आपनो मानिक सो मन
हाथ पराये दै कौनै लह्यो है ? ।

व्यतिरेक—

काठहु तें हठ तेरो कठोर, इते विरहानलहू न जरयो री ।

सांग-रूपक—

दान-दया-सुभ-सील सखा बिभुकैं,
गुन-भिच्छुक को बिभुकावैं ।

साधु-सुधी सुरभी सब केसव,
भाजि गयीं भ्रम भूरि भजावैं ॥
साजन-संग बछेरू डरैं,
बिडरैं बृखभादि, प्रवेस न पावैं ।
बार बड़े अघ-बाध बँधे,
उर-मंदिर बालगोपाल न आवैं ॥

विभावना—

[१] चंदन को डारे चितु चौगुनो पिरात है ।

[२] जद्यपि इन्धन जरि गये, अरि-गन केसवदास ।
तदपि प्रतापानलन के, पल-पल बढ़त प्रकास ॥

[३] केशव, वाकी दसा सुनि हौं
अब आगि बिना अँग अंगनि डाढ़ी ।

विशेषोक्ति—

सोने सिंगारे ही सौंधे चढ़ाये हू, पीतर की पितराई न जाई ।

विषम—

माखन सी जीभ मुख कंज सो, कुँवरि कहु,
काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है ॥

विरोधाभास—

बिख-मय यह गोदावरी, अमृतन के फल देत ।
केसव जीवन-हार कों, दुख असेस हरि लेत ॥

समासोक्ति—

जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज ।
तहीं कियो भगवंत बिनु संपति सोभा साज ॥

अन्योक्ति—

संकलन के छन्द देखिये—

अप्रस्तुत प्रशंसा—

[१] देखहु धौं प्रानपति निलज अली की गति ।
मालती सों मिल्यो चाहै लीने साथ अलिनी ॥

[२] श्री नृसिंह प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ ।
गये मास-दिन आसु ही, झूठी ह्वैहै, नाथ ॥

यथासंख्य—

राजा अरु जुवराज जग प्रोहित मंत्री मित्र ।
कामी कुटिल न सेइये कृपण कृतघ्न अमित्र ॥

नाद सौंदर्य और शब्दालंकार के लिये ये उदाहरण लीजिये—

[१] तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर ।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर ॥
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै ।
सारी सुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं ॥
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर-गन ।
अति प्रफुलित फलित रहै सव केसवदास विचित्र वन ॥

[२] उचकि चलत हरि दचकन दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल-थल ।
लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गयी भोगवती अतल वितल तल ॥

[३] घनस्याम घने घन-वेख धरे जु वने वन तें व्रज आवत हैं ।

[४] बात बनाइ बनाइ कहा कहौ लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आये ।

[५] केसव भूखन में भवि भूखन-भू-तन तें तनया उपजायी ।

[६] तरनि-तनूजा-तीर तरुवर-तर ठाढ़े,
तारी दै-दै हँसत कुमार कान्ह प्यारी सों ।
तेरै ही जीय जियै जिनको जिय,
रे जिय ता बिन तू 'ब जियोई ।
बार-बार बरजत, बावरी है; बारौं आनि,
बीरी ना खवाइ, बीर, बिख सी लगत है ॥

[७] हरित-हरित हार हेरत हियो हरत,
हारौं हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूं लहौं ।
बन-माली ब्रज पर बरखत बन-माली,
बनमाली दूर, दुख केसव कैसे सहौं ? ॥
हृदय-कमल नैन देखिकै कमल-नैन,
होऊँगी कमल-नैनी, और हौं कहा करौं ?
आप-घने घन स्याम घन ही से होत, घन
स्याम के दिवस घनस्याम बिन क्यों रहौं ॥

केशव की कुछ दूर की उड़ानो के नमूने लीजिये—

[१] बैठे जराइ जरे पलिका पर राम-सिया सब को मन मोहैं ।
जोति-समूह रहे मढ़ि कै सुर भूलि रहे बपुरे नर को हैं ॥
केसव, तीनिहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं ।
सोभन सूरज मंडल मांझ मनो कमला-कमलापति सोहैं ॥

[२] केसव, अेक समै हरि-राधिका
आसन अेक लसे रँग भीने ।

आनँद सों निज-आनन की द्युति,
देखत दर्पन में दृग दीने ॥
भाल के लाल में बाल बिलोकत
ही भरि लालन लोचन लीने ।
सासन पीय सवासन सीय,
हुतासन में मनु आसन कीने ॥

[३] भाल गुही गुन लाल लटैं,
लपटी लर मोतिन की सुखदैनी ।
ताहि बिलोकत आरसी लै करि,
आरस सों इक सारस-नैनी ॥
केसव, कान्ह दुरे दरसी,
परसी उपमा मति को अति पैनी ।
सूरज-मंडल में ससि-मंडल,
मध्य धँसी जनु ताहि त्रिवैनी ॥

ऊपर जो उदाहरण दिये हैं उनमें अलंकार अस्वाभाविक या प्रयत्न-प्रसूत नहीं जान पड़ते । कहीं-कहीं वे स्पष्टतया प्रयत्न प्रसूत दिखाई पड़ते हैं । जैसे—

(१) सब जाति फटी दुख की दुपटी
कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
निघटी रुचि मीच घटी हू घटी,
जग जीव-जतीन की छूटी तटी ॥
अघ-ओघ की बेरी कटी विकटी
निकटी प्रकटी गुरु-ग्यान गटी ।

चहूँ ओरनि नाचति मुक्ति-नटी,
गुन धूरजटी बन पंचवटी ॥

इस पद्य में अनुप्रास उपहास की सीमा तक पहुँच गया है।

कलभन लीने कोट पर खेलत सिसु चहुँ ओर।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चित चोर ॥

अलंकार भाव का सहायक होने के बदले विघातक हो गया है। यहाँ कवि कोट की चहारदिवारी की चौड़ाई की विशालता का भान कराना चाहता है, पर दोहे के उत्तरार्ध में जो उत्प्रेक्षा है वह पूर्वार्ध के प्रभाव को नष्ट कर देती है।

कहीं कहीं अलंकार का अनौचित्य अयन्त उद्वेग-जनक हो उठता है। लंका में अंगद आदि बंदर मंदोदरी की दुर्दशा करते हैं और उसके वस्त्राभूषणों को तोड़ और फाड़ डालते हैं। कवि उसका इस प्रकार वर्णन करता है।

छुटी कंठमाला, तुरैं हार टूटे।
खसैं फूल फूले लसैं केस छूटे ॥
फटी कंचुकी किंकिनी चारु टूटी।
पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी॥

और इस प्रकार वर्णन करता करता झट शृंगार में जा पहुँचता है—

बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं।
किधौं सांच हूं श्रीफलै सोभ साजैं ॥
किधौं स्वर्न के कुम्भ लावन्य पूरे।
बसीकर्न के चूर्न संपूर्न रूरे ॥
किधौं गुच्छ द्वै काम-संजीवनी के ॥

करुणा के स्थान में इस प्रकार का यह शृङ्गारिक वर्णन यहाँ अत्यंत अनुचित जान पड़ता है।

वासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत।

यहाँ पर राम के लिये उलूक की उपमा अत्यन्त अनौचित्य-पूर्ण है और खटकती है।

सुंदर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की रुचि को है।
तापर भौंर भलो मन-रोचन लोक-विलोकन की रुचि रोहै॥
देखि दयी उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहैं।
केसव, केसवराइ मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहैं॥

इस पद्य में ब्रह्मा-विष्णु की जो 'कसरत' करायी गयी है उसे कवि-कल्पना की उड़ान भले ही कहा जाय पर पाठक की कल्पना को उसके द्वारा प्रस्तुत दृश्य को सुचारु रूप से हृदयंगम करने में बिलकुल सहायता नहीं मिलती।

नीचे के उद्धरण में अेक दर्जन उपमानी रंगरूट ड्रिल के लिये पंक्तिबद्ध खड़े दिखाये गये हैं।

पंजर कै खंछरीट नैनन को, केसौदास,
कैधौं मीन-मानस को जलु है कि जारु है।
अंग को कि अंगराग, गेडुवा कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को, उर को कि हारु है॥
बंधन हमारो काम-केलि को, कि ताड़िवे को
ताजनो विचार को कै विजन विचारु है।
मान की जमनिका कै कंज-मुख मूँदिवे को,
सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है॥

केशव के सब से अधिक खटकने वाले अलंकारों वे हैं जहाँ उपमेय-उपमान में केवल शब्दिक समानता होती है।

अंगद को पितु सो सुनिये जू।
सोहत तारहि संग लिये जू॥

यहाँ चंद्रमा को अंगद के पिता (बालि) की उपमा दी है। दोनों में कोई समानता नहीं न तो कोई साधर्म्य है और न रूप-सादृश्य सादृश्य केवल इतना है कि दोनों के साथ 'तारा' है। तारा के भी श्लेष से जब दो अर्थ लिये जायँगे तब कहीं ठीक समझ में आवेगा।

दंडकारण्य की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

राजति है यह ज्यों कुल-कन्या।
धाई बिराजति है सँग धन्या॥

दंडक की शोभा कुल-कन्या के समान है। क्यों? दोनों में समानता? केवल 'धाय' का साथ होना। श्लेष से धाय शब्द के दो अर्थ धाई और धाय नाम का पेड़ हैं। शाब्दिक समानता के अतिरिक्त कोई समानता नहीं।

वेर भयानक सी अति लगै।
अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥

इन पंक्तियों में तो अनौचित्य की अति हो जाती है। कहाँ दंडक वन की सुन्दर शोभा और कहाँ भयानक प्रलय काल।

कहीं-कहीं अलंकार का निर्वाह भी कवि ठीक-ठीक नहीं कर पाया है। दो अलंकारों का परस्पर भद्दा मिश्रण कर डाला है—

नागर नगर अपार महामोह-तम मित्र से।
तृष्णा-लता-कुठार, लोभ-समुद्र अगस्त्य से॥

यहाँ परंपरित रूपक और उपमा को (अथवा चाहें तो उत्प्रेक्षा भी ले सकते हैं) मिलाकर गड़बड़ कर डाला।

९—केशव के छन्द

केशव ने अपने ग्रन्थों में मुख्यतया नीचे लिखे छन्दों का प्रयोग किया है—

(१) रसिक प्रिया और कविप्रिया में दोहा, सवैया और घनाक्षरी (कवित्त) का। लक्षण प्रायः दोहों में दिये गये हैं और उदाहरण सवैयों और घनाक्षरियों में।

(२) रतनबावनी में वीररस के उपयुक्त छप्पय का प्रयोग किया गया है।

(३) वीरसिंहदेव-चरित आख्यान-काव्य है। आख्यान-काव्य के लिये अपभ्रंश-काल से ही चौपाई का प्रयोग होता रहा है। केशव ने भी चौपाई का ही प्रयोग किया है और बीच-बीच में दोहे भी दिये हैं।

(४) रामचन्द्रिका और विज्ञानगीता में कवि ने विविध प्रकार के छन्दों से काम लिया है। रामचन्द्रिका को छन्दों का अजायबघर कहा गया है। पिंगल ग्रन्थों में दिया हुआ प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध शायद ही कोई छन्द उसमें छूटा हो। एक-एक, दो-दो अक्षरों तक के छन्द उसमें मौजूद हैं। जान पड़ता है कि कवि ने छन्दों के समस्त भेद-प्रभेदों के

उदाहरण उपस्थित करने के लिये ही इस ग्रन्थ की रचना की है । जब रीति के सभी अङ्गों के उदाहरण दिये गये हैं तो छन्द ही क्यों छूट जायँ ।

अधिकांश छन्दों के नाम और भेद केशव की कृपा से ही बचे रह गये हैं अन्यथा लोग उनको भूल चले थे । पिंगल के ग्रन्थों में भी उनके उल्लेख नहीं मिलते । रामचन्द्रिका में एक ही दण्डक के अनेकों भेद देख लीजिये । चौपाई के भी दर्जन से ऊपर रूप वहाँ देखने को मिलेंगे ।

इतने छन्दों का प्रयोग करने पर भी केशव के खास छन्द सवैया और कवित्त हैं । इनमें ये बहुत सफल हुये हैं । केशव के बाद आने वाले सभी रीति-कवियों ने इन्हीं को प्रधानतया अपनाया । वीररस के वर्णन में केशव ने छप्पय, भुजङ्गप्रयात और वसन्ततिलका का प्रयोग किया है और अच्छी सफलता प्राप्त की है । रामचन्द्रिका में चौपाइयाँ भी अच्छी बन पड़ी हैं ।

सब प्रकार के छन्दों में एक समान सफल कविता कर लेना बड़े से बड़े कवि के लिये भी शायद ही सम्भव हो । केशव से ऐसी आशा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा । हाँ, केशव के जो खास छन्द हैं उनमें वे अच्छी तरह सफल हुये हैं और रीतिकाल के शायद ही किसी कवि से पीछे रहे हों ।

छोटे छन्द गम्भीर प्रबन्धकाव्य के अनुपयुक्त नहीं होते सिवाय उन स्थानों के जहाँ गति में वेग या क्षिप्रता हो । अन्यथा उनसे काव्य की गम्भीरता को हानि पहुँचती है । इसी प्रकार प्रबन्ध-काव्य सब प्रकार के छन्दों का उपयुक्त क्षेत्र नहीं । छन्दों के उदाहरण उपस्थित करने हों तो

मुक्तक-काव्य का ही सहारा लेना चाहिये। जल्दी-जल्दी छन्द को बदलना काव्य की गति में बार-बार बाधा उपस्थित करता है। जान पड़ता है जैसे बार-बार झटके लगते हैं। छन्द-परिवर्तन हो पर वहीं जहाँ अेक मञ्जिल खतम हो जाय। इसीलिये संस्कृत के साहित्याचार्यों ने सर्ग की समाप्ति या सर्ग-परिवर्तन पर ही छन्द-परिवर्तन का विधान किया है।[1]

१०—क्या केशव की कविता कठिन है?

केशव को कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है। साथ ही ये कहावतें भी प्रसिद्ध हैं—

(१) कवि को दीन्ह न चहै विदाई,
पूछै केसव की कविताई।

(२) दीन्हीं न चाहै विदाई नरेस तो
पूछत केसव की कविताई॥

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' में निम्नलिखित छन्द को अतुकांत बताया है और कहा है कि केशव ने तीन सौ साल पहले अतुकांत कविता की नींव डाली। पर यह ठीक नहीं है। पाठक देखेंगे कि इसमें प्रत्येक चरण के दो भाग करके उनकी तुकें मिलायी गयी हैं—

गुन - गन मनि - माला चित्त चातुर्य - साला।
जनक सुखद - गीता पुत्रिका पाइ सीता॥
अखिल - भुवन - भर्त्ता ब्रह्म - रुद्रादि - कर्त्ता।
थिर - चर - अभिरामी कीय जामातु नामी॥

इस में संदेह नहीं कि केसव की कविता अन्यान्य रीति-कवियों की अपेक्षा साधारणतया कुछ कठिन है। इस में कई कारण हैं। फिर भी वह ऐसी क्लिष्ट नहीं कि सावधानी से विचारने पर समझ में न आवे। हमारी सम्मति में देव की कविता अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। (अधिक मधुर भी है।)

कुछ तो अव्यवस्थित भाषा के कारण और कुछ क्लिष्ट कल्पना तथा श्लेष आदि अलंकारों के कारण केशव की कविता क्लिष्ट प्रतीत होती है। अव्यवस्थित भाषा के कारण वाक्य का अन्वय एक दम ध्यान में नहीं आता। जैसे—

राज देहु जो वाकी तिंया को।

इसका अर्थ है जो राज्य और उसकी स्त्री को दिला दो। इसी प्रकार केसव ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनका व्रजभाषा में सार्वजनिक प्रचार नहीं था। बुन्देलखंड के प्रांतीय शब्द भी कहीं-कहीं मिल जाते हैं। एकाध जगहों में न्यून पद दोष के कारण भी अर्थ शीघ्र ध्यान में नहीं आता। जैसे—

पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु।

इसका अर्थ है—पानी, पावक, पवन और प्रभु साधु और असाधु के साथ समान व्यवहार करते हैं।

केशव-काव्य की क्लिष्टता में टीकाकारों ने भी बहुत सहायता की है। रामचंद्रिका की जानकीसहाय कृत टीका तो फिर भी अच्छी है यद्यपि वे भी कई स्थानों पर केशव का भाव ठीक से नहीं समझ पाये हैं।

रसिक प्रिया पर सरदार कवि की जो टीका है[1] वह तो निरा भ्रम है। पग पग पर अशुद्ध अर्थ किया गया है। जहाँ ठीक समझ में नहीं आया वहाँ मनमाना अर्थ कर डाला। अर्थ करते समय भ्रम को स्पष्ट करने के बजाय व्यर्थ की शंकाएं उपस्थित की हैं और उनके वैसे ही हास्यास्पद समाधान दिये हैं। यही हाल कविप्रिया की प्रचलित टीकाओं का भी है।

क्लिष्टता का अेक और कारण है शुद्ध पाठ का अभाव। केशव के ग्रंथों के विभिन्न प्रतियों में, पाठान्तरों की कमी नहीं, जिनमें से अनेक अशुद्ध हैं। केशव-काव्य के शुद्ध पाठ वाले संस्करण की नितान्त आवश्यकता है।

११–आचार्य केशव

केशव हिन्दी में रीति-काव्य के आरम्भ-कर्त्ता माने जाते हैं। रीति-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थ सर्व प्रथम केशव ने ही लिखे। यों तो उनके पूर्व भी कृपाराम, गोप, करनेस आदि रसों अेवं अलङ्कारों पर छोटे-मोटे ग्रन्थ लिख चुके थे, पर हिन्दी साहित्य पर उनका प्रभाव नहीं पड़ा। वे क्षीण प्रयास मात्र थे। परिवर्त्तन की दिशा में संकेतक होने पर भी वे साहित्य के प्रभाव को रीति-काव्य की ओर नहीं मोड़ सके। 'इस

१ यह भी सरदार कवि की अपनी कृति नहीं है। एक प्राचीन टीका की हूबहू नक़ल है। जिसमें कहीं २ कुछ अंश संक्षिप्त कर दिया गया है। आश्चर्य है कि लेखक ने कहीं टीका के मूल-लेखक का उल्लेख तक नहीं किया।

दिशा में सब से पहला विस्तृत और गम्भीर प्रयत्न केशव ही का था और यद्यपि उनके मत को हिंदी में साहित्य-शास्त्र पर लिखनेवालों ने आधार-रूप से नहीं ग्रहण किया फिर भी उन ने लोगों की प्रवृत्ति को अेक विशेष दिशा की ओर पूर्णतया मोड़ दिया।' केशव संस्कृत के अच्छे पंडित और प्रसिद्धि-प्राप्त कवि थे और साथ ही अेक राजा के आदरणीय गुरु थे। इस कारण वे अैसी स्थिति में थे जो उनको प्रभावशाली बना सकती थी। साहित्य के प्रभाव को मोड़ देने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उन के अनुकरण पर रीति ग्रन्थो की भरमार हो चला। कवियों ने कविता लिखने की यह प्रणाली ही बना ली कि पहले संक्षेप में काव्यांग का लक्षण देकर उसके उदाहरण रूप में कविता लिखना। इस प्रथा ने धीरे-धीरे इतना ज़ोर पकड़ा कि बिना रीति-ग्रन्थ लिखे कवि-कर्म पूरा समझा ही नहीं जाने लगा।

केशव ने काव्यांगों के निरूपण में काव्यादर्श-कार दंडी, कविकल्प-लतावृत्ति-कार अमरचंद्र और अलंकारशेखर-कार केशवमिश्र का अनुसरण किया। चंद्रालोक-कार जयदेव और कुवलायनंद-कार अप्पय्य-दीक्षित का मार्ग अपेक्षाकृत सरल था। चिंतामणि और जसवंतसिंह ने अपने रीतिग्रन्थ इन्हीं का अनुसरण करके लिखे। पिछले रीति-कवियों ने इन्हीं का पथ ग्रहण किया। बात यह थी कि रीतिकाल के कवियों में अेकाध अपवाद को छोड़ कर बाकी को काव्य-रीति-निरूपण से कोई रुचि न थी। वे रीति-निरूपक नहीं, कवि थे। उनका उद्देश्य रीति-निरूपण नहीं कविता करना था। रीति-निरूपण तो परंपरापालन के लिअे बाध्य होकर करना पड़ता था। यही कारण था कि उन ने अपेक्षाकृत सरल मार्ग को ही ग्रहण किया। अेक दोहे में संक्षेप से लक्षण कहा और छुट्टी हुई।

संस्कृत में कवि और आचार्य सदा पृथक व्यक्ति रहे पर हिंदी में केशव की कृपा से दोनों का एकीकरण हो गया। कवि केशव को रीति-ग्रन्थों के अभाव के कारण आचार्य केशव भी बनना पड़ा। फल-स्वरूप हिंदी में साहित्य-विवेचना का ठीक विकास नहीं हो पाया। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा उनका खण्डन-मण्डन, नये नये सिद्धांतों का प्रतिपादन, नयी-नयी उद्भावनाएँ यह कुछ भी नहीं हो पाया।

जैसा कि ऊपर कह आये हैं केशव ने मुख्यतया दंडी, अमरचंद्र और केशवमिश्र को आधार मान कर काव्यांगों का निरूपण किया है जो रस-नीति आदि सब कुछ अलङ्कार के अंतर ही ले लेते थे। साहित्य शास्त्र को अधिक व्यवस्थित और समुन्नत रूप देने वाले आनंद-वर्धन, मम्मट आदि का मार्ग उन ने नहीं ग्रहण किया। रीतिकाल के अन्यान्य कवियों की भाँति केशव का विवेचन भी वैज्ञानिक नहीं है। उक्त-ग्रन्थों के आधार पर उन ने साधारण सा चलताऊ विवेचन कर दिया है। बहुत से स्थलों पर न तो लक्षण ही स्पष्ट हैं और न उदाहरण ही ठीक बैठते हैं। एक बात केशव ने नयी की। विविध भावों का वर्णन करते हुए उनने उनके प्रकाश और प्रच्छन्न दो दो भेद किये। पर ये भेद महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उन्हीं तक रह गये। पिछले कवियों ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनका ध्यान तो अधिक से अधिक सरलीकरण की ओर था। इन सूक्ष्म भेदोपभेदों की ओर वे क्यों ध्यान देने लगे?

केशव के रीति संबंधी दो ग्रन्थ हैं—रसिक प्रिया और कविप्रिया (इनका वर्णन पहले दिया जा चुका है)।

भामह, दंडी आदि की भाँति केशवदास काव्य में अलङ्कारों को प्रधानता देनेवाले चमत्कार वादी कवि हैं। कविप्रिया में लिखते हैं—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूखन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त ॥

अर्थात् उनके अनुसार काव्य के लिये अलङ्कार आवश्यक हैं। अलङ्कार-हीनता को उन ने दोषों के अन्तर्गत गिना है।[1]

रसों को उन ने बिलकुल भुलाया नहीं है पर रसवत् अलङ्कार के अन्तर्गत कर दिया है।

अलङ्कारों के उन ने दो भेद किये हैं - (१) सामान्य और (२) विशिष्ट। सामान्यालङ्कार वास्तव में अलङ्कार नहीं हैं कुछ वस्तुओं का वर्णन किस किस रूप रङ्ग में या किस प्रकार करना चाहिये यही सामान्यालङ्कार के प्रकरणों में बताया गया है जैसे इन का वर्णन किया जाय तो उसकी किन किन वस्तुओं का वर्णन किया जाय अथवा कीर्त्ति का वर्णन किया जाय तो उसे किस रङ्ग का बताना चाहिए। इत्यादि-इत्यादि।

विशिष्टालङ्कार प्रकरणों में वास्तविक अलङ्कारों का विवेचन है नीचे लिखे अलङ्कारों को केशव ने लिया है —

स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा। आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, रसवद्, ऊर्जस्वि, अर्थान्तरभास, व्यतिरेक, अपह्नुति। समाहित, सुसिद्धि,

---

१. छंद-विरोधी पंगु गनि, नगन जु भूखन-हीन।

प्रसिद्धि, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परिवृत्ति, उपमा, यमक, चित्र।

अलङ्कारों के अतिरिक्त केशव ने दोषों का वर्णन किया है। दोनों के दो प्रकार करके पहले अंध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक के पाँच दोष बताये हैं जिनके लक्षण इस प्रकार हैं —

अंध विरोधी पंथ को
बधिर जु सब्द-विरुद्ध
छंद-विरोधी पंगु गनि
नगन जु भूखन-हीन
मृतक कहावै अर्थ बिनु।

इनके अतिरिक्त १३ दोष और बताये हैं —

अगण, यतिभंग, व्यर्थ, अपार्थ, हीन-रस, कर्णकटु, पुनरुक्ति हीनक्रम, देश-विरोध, काल-विरोध, लोक-विरोध, न्याय-विरोध, आगम-विरोध।

रसिकप्रिया में शृङ्गार रस के उपादानों का निरूपण किया गया है जिनकी नामावली पहले दी जा चुकी है।

१२—केशव का हिंदी साहित्य में स्थान

जन-मत के अनुसार केशव का स्थान सूर और तुलसी के बाद ही है। 'सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास' यह लोकोक्ति न-जाने कब से चली आयी है। एक और लोकोक्ति के अनुसार सूर,

तुलसी और केशव ही हिंदी के तीन सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आधुनिक आलोचकों के रुख में धीरे-धीरे परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। मिश्र-बन्धुओं ने केशव का स्थान सूर, तुलसी, देव, बिहारी, भूषण और मतिराम के बाद यानी सातवाँ रखा है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें हृदय-हीन कह कर कवि ही नहीं माना। कृष्णशङ्कर शुक्ल और पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने उनमें गुणों की अपेक्षा दोष ही अधिक पाये हैं। अन्यान्य विद्वान भी प्रायः इन्हीं के अनुयायी हो चले है। इस युग में लाला भगवानदीन ही ऐसे व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं जिन ने डंके की चोट केशव को तुलसी और सूर से भी श्रेष्ठ बताने का साहस किया। लाला जी केशव के अन्धभक्त थे। उन्हों ने केशव के दोषों को भी गुणों के रूप में देखा है। उन ने केशव में बताये जाने वाले दोषों के निराकरण का ही प्रयास किया, पर केशव की खूबियाँ जनता के सामने नहीं रखीं।

केशव में दोष हो सकते हैं पर वे इतने हीन नहीं हैं जितना कि आलोचकों ने उन्हें बताया है। दोष किस कवि में नहीं है? रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों में थोड़ी या बहुत वे सभी त्रुटियाँ पायी जाती हैं जो केशव में बतायी गयी हैं।

केशव परिस्थितियों के निर्माता नहीं उन से निर्मित थे। तुलसी की भाँति वे परिस्थिति के ऊपर न उठ सके। उनकी त्रुटियाँ बहुत-कुछ परिस्थितियों द्वारा प्रसूत हैं।

केशव संस्कृत के विद्वान थे। उस समय के बहुत पहले संस्कृत-साहित्य अपने प्राचीन आदर्श से गिर चुका था। मुक्तककाव्य की प्रधानता हो चली थी। अलङ्कार-वाद का पुनः उत्थान हुआ। चन्द्रालोककार जयदेव ने तो यहाँ तक कह डाला —

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥

कविता में चमत्कार को ही मुख्य समझा जाने लगा। कल्पना की उड़ान और दूर की सूझ ही कवि के मुख्य गुण समझे जाने लगे थे।

साथ ही कवि-शिक्षा के ग्रंथ भी बन गये थे। लोग उन्हीं को पढ़ कर और उनका अनुसरण कर-कर ही कवि बनने लगे। कविता बहुत कुछ मस्तिष्क के निकट जा पहुंची।

कविता में घोर शृंगारिकता अपना अड्डा जमाने लगी जो अश्लीलता की हद तक जा पहुँचती थी। हनुमन्नाटक में सीता-राम का शृंगार-वर्णन आज कल की भाषा में घोर अश्लील कहा जा सकता है। प्रेम का आदर्श बहुत कुछ गिर गया। कविता विलासी आश्रयदाताओं के विलास की वस्तु रह गयी।

ऐसी परिस्थिति में केशव का आविर्भाव हुआ। फिर वे थे दरबारी कवि। ऐसे दरबार के जहां वेश्याओं का जमघट भी था। आश्रयदाता की फरमाइश से केशव ने अपनी रचनाएं लिखीं।

ऐसे वातावरण में लिखित रचनाओं में यदि दोष मिलें तो कुछ भी अस्वाभाविक नहीं। उनमें प्रेम के ऊँचे आदर्शों की आशा करना उचित नहीं कहा जा सकता। केशव की रामचंद्रिका हनुमन्नाटक के आदर्श पर लिखी गयी है जो, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भयंकर शृंगार से लदी है। केशव ने उसे बचा दिया क्या यही कम किया।

प्राकृत और अपभ्रंश कविता के प्रभाव से राधा कालीन कविता के नायक-नायिका बन बैठे। राम का चरि लिये हुए था। उन्हें साधारण नायक-नायिका बनाने का र से नहीं हुआ। पर संस्कृत के कवियों ने इधर हाथ मारन दिया था और गीत गोविंद के ढंग पर गीतराघव आदि भी हो गयी। हनुमन्नाटक ने तो सब बाँध ही तोड़ केशव की—

स्रम तेऊ हरैं तिन को कहि केसव, चंचल चारू दृगंचल

इस पंक्ति में जिस सीता को हम पाते हैं वह कहाँ से आयं बताना कठिन नहीं। तुलसी ने भी हनुमन्नाटक का बहुत आध है पर वे परिस्थितियों के प्रभाव से परे थे। यदि तुलसी का राम के गंभीर चरित्र की पुनः दृढ़ता से स्थापना न करता आश्चर्य था कि सीता-राम की भी राधा-कृष्ण की ही दुर्गति होती।

केशव ने केवल कविता ही नहीं की। रीति का विवेचन भी करना था। काव्य-रचना उनने उदाहरण रूप में की। वे बहुत बँधे हुये थे। फिर भी उन की रचनाओं के अनेक अंश बहुत सुन्दर हुये हैं।

रामचंद्रिका के जो अंश उन ने हनुमन्नाटक आदि के प्रभाव रहित हो कर लिखे वे प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से बहुत अच्छे बने हैं यदि समस्त रामचंद्रिका उनने उसी प्रकार लिखी होती तो वह अ सफल प्रबंध-काव्य हुआ होता।

केशव को हृदयहीन बताना केशव के साथ अन्याय करना है

भावुकता न थी जो श्रेष्ठ कवि में होनी चाहिये। वे संस्कृत-साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना-कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये भाषा पर जैसा अधिकार चाहिये वैसा उन्हें प्राप्त न था। अपनी रचनाओं में उनने अनेक संस्कृत - काव्यों की उक्तियाँ लेकर भरी हैं। पर उन उक्तियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में उनकी भाषा बहुत कम समर्थ हुई हैं। पदों और वाक्यों की न्यूनता, अशक्त, फालतू शब्दों के प्रयोग और सम्बन्ध के अभाव आदि के कारण भाषा भी अप्रांजल और ऊबड़-खाबड़ हो गयी है और तात्पर्य भी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो सका है। केशव की कविता जो कठिन कही जाती है उसका प्रधान कारण उनकी यही त्रुटि है—उन की मौलिक भावनाओं की गंभीरता या जटिलता नहीं।

× × ×

केशव केवल उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गम्भीर और मार्मिक पक्षों पर उन की दृष्टि नहीं थी। अतः वे मुक्तक रचना के ही उपयुक्त थे, प्रबंध-रचना के नहीं।

× × ×

संबंध-निर्वाह की क्षमता केशव में न थी। उनकी रामचंद्रिका अलग अलग लिखे वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है।

× × ×

केशव के लिये प्राकृतिक दृश्यों में कोई आकर्षण न था।

केशव की रचना में सूर, तुलसी आदि की सी सरसता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय करा कर उनने आगे के लिये मार्ग खोला।

जिस विषय को उनने हाथ में लिया उसको पूर्णता प्रदान की। उन के बनाये हुओ कविप्रिया और रसिकप्रिया नामक ग्रन्थ रीति-ग्रन्थों के सिरमौर हैं।

× × ×

रामचंद्रिका की रचना पांडित्य-प्रदर्शन के लिओ हुई है। और मैं यह दृढ़ता से कहता हूं कि हिंदी - संसार में कोई प्रबंध-काव्य इतना पांडित्य पूर्ण नहीं है।······ वे संस्कृत के पूर्ण विद्वान थे। उनके सामने शिशुपाल-वध और नैषध का आदर्श था। वे इसी प्रकार का काव्य हिंदी में निर्माण करने के उत्सुक थे। इसी लिओ रामचन्द्रिका अधिक गूढ़ है।

× × ×

कहा जता है कि हिंदी-संसार के कवियों ने प्रकृति-वर्णन के विषय में बड़ी उपेक्षा की है। उनने जब प्रकृति-वर्णन किया है, तब उससे उद्दीपन का कार्य ही लिया है। प्रकृति में जो स्वाभाविकता होती है, प्रकृतिगत जो सौन्दर्य होता है, उस में जो विलक्षणताऍं और मुग्ध-कारिताऍं पायी जाती हैं उनका सच्चा चित्रण हिंदी साहित्य में नहीं पाया जाता।······यदि हिन्दी संसार के इस कलंक को कोई कुछ धोता है तो वे कविवर केशवदास के ही कुछ प्राकृतिक वर्णन हैं और वे रामचंद्रिका ही में मिलते हैं।

२—रामचन्द्र शुक्ल

केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उन में वह सहृदयता और

भावुकता न थी जो अेक कवि में होनी चाहिये। वे संस्कृत-साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना-कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिअे भाषा पर जैसा अधिकार चाहिअे वैसा उन्हें प्राप्त न था। अपनी रचनाओं में उनने अनेक संस्कृत-काव्यों की उक्तियाँ लेकर भरी हैं। पर उन उक्तियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में उनकी भाषा बहुत कम समर्थ हुई हैं। पदों और वाक्यों की न्यूनता, अशक्त, फ़ालतू शब्दों के प्रयोग और सम्बन्ध के अभाव आदि के कारण भाषा भी अप्रांजल और ऊबड़-खाबड़ हो गयी है और तात्पर्य भी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो सका है। केशव की कविता जो कठिन कही जाती है उसका प्रधान कारण उनकी यही त्रुटि है—उन की मौलिक भावनाओं की गंभीरता या जटिलता नहीं।

× × ×

केशव केवल उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के प्रेमी थे। जीवन के नाना गम्भीर और मार्मिक पक्षों पर उन की दृष्टि नहीं थी। अतः वे मुक्तक रचना के ही उपयुक्त थे, प्रबंध-रचना के नहीं।

× × ×

संबंध-निर्वाह की क्षमता केशव में न थी। उनकी रामचंद्रिका अलग अलग लिखे वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है।

× × ×

केशव के लिअे प्राकृतिक दृश्यों में कोई आकर्षण न था।

केशव की रचना में सूर, तुलसी आदि की सी सरसता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय करा कर उनने आगे के लिअे मार्ग खोला।

४—श्यामसुन्दरदास

रस-परिपाक की ओर इनका ध्यान बहुत कम रहता है, कहीं-कहीं अलंकारो के पीछे पड़ कर ये इतनी जटिल और निरर्थक पद-रचना करते हैं कि सहृदयों को ऊब जाना पड़ता है। इनकी कृतियों के क्लिष्ट होने का कारण इन का काव्य के वास्तविक ध्येय को न समझना ही है। हाँ, जहाँ कहीं हृदय की प्रेरणा से रचना की गयी है, वहां न तो क्लिष्टता है और न वाह्य चमत्कार। संस्कृत से पूर्ण परिचित रहने के कारण इनकी भाषा संस्कृत-मिश्रित और साहित्यिक है। राज-दरबार में रहने के कारण इनमें वाग्वैदग्ध्य बहुत अधिक था। इसलिए इनके कथोपकथन अच्छे हुए हैं। वैभव और तेज-प्रताप का वर्णन करने में इन्हें अद्वितीय सफलता मिली है।

× × ×

रीतिकाल के इन प्रथम आचार्य केशवदास का स्थान हिंदी में बहुत अधिक महत्त्व-पूर्ण है। उन्हें हृदयहीन कह कर संबोधित करने में हम उन के प्रति अन्याय करते हैं; क्यों कि अेक तो उनकी हृदय-हीनता जानी-समझी हृदयहीनता है, और फिर अनेक स्थलों में उन ने पूर्ण सहृदय होने का परिचय दिया है, जिस कवि की रसिकता वृद्धावस्था तक बनी रही हो उसे हृदय-हीन कहा भी कैसे जा सकता है?[१] यह बात अवश्य है कि केशवदास उन कवि-पुंगवों में नहीं कहे जा सकते जो अेक

१ इस सम्बन्ध में केशव का अेक दोहा प्रसिद्ध है—

केसव, केसन अस करी जस अरि हू न कराहिं।
चंद-बदनि मृग-लोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥

पर साथ ही यह भी ध्यान में रहना चाहिये कि यह दोहा केशव की स्वतन्त्र कृति नहीं किंतु संस्कृत के एक पद्य का अनुवाद है।

न० दा० स्वा०

विशिष्ट परिस्थिति के निर्माता हों। वे तो अपने समय की परिस्थिति द्वारा निर्मित हुये हैं और उनके प्रत्यक्ष प्रतिबिंब हैं।

५—लाला भगवानदीन

उद्देश्य के महत्व से अंदाज लगाया जाय तो केशव तुलसी से बढ़कर लोकोपकारी प्रमाणित होंगे।

केशव केवल रीति के ही आचार्य न थे वरन् देश-भक्ति के भी आचार्य थे। तुलसीदास ने 'स्वान्तः सुखाय' लिखकर स्वार्थीपना दिखलाया और केशव ने काव्यपंथ दिखलाया।

× × ×

केशव की कविता पढ़ कर ध्यान से विचारने पर स्पष्ट जान पड़ता है कि केशव जी पांडित्य में और सांसारिक अनुभवों में सूर और तुलसी से कहीं बढ़ कर थे।

× × ×

इन बातों के होते हुए भी जो लोग केशव को सूर और तुलसी से कम समझते हैं, उन्हें हम क्या कहें और कैसे समझावें।

यदि काव्य को अेक कला मान कर देखा जाय और इस लिहाज से विचार किया जाय (जैसा हम कह रहे हैं) तो हम दावे से कह सकते हैं कि केशव इन दोनों कवियों से बढ़ कर जचेंगे।

× × ×

राम और कृष्ण के भक्तों ने तुलसी और सूर का गुण गा-गाकर सर्व साधारण के मन में उनका आसन जमवा दिया है, पर काव्य-कला-चातुरी के विचार से देखा जाय तो केशव का स्थान उनके ऊपर है।

केशव को मालूम था कि भावमय काव्य करने में सूर और तुलसी ने पराकाष्ठा कर दी, अब उनसे आगे बढ़ जाना असम्भव है। अतः केशव ने दृष्यमय काव्य ही की ओर अधिक ध्यान दिया। आचार्य

होने के कारण उन्हें जिस बात की कमी दिखाई दी उसी की ओर वे झुक पड़े।......केशव नहीं जानते थे कि इन जान-बूझ कर की हुई त्रुटियों के कारण आगे उन्हें 'हृदय-हीन' की पदवी मिलेगी।

(६) रामकुमार वर्मा

केशवदास ने अपने काव्य-आदर्शों में चारण-काल, भक्तिकाल और रीति-काल के आदर्शों का समुच्चय उपस्थित किया। इसी दृष्टि से केशवदास के काव्य का महत्त्व है।

कथा की दृष्टि से रामचन्द्रिका में प्रसङ्गों का नियमित विस्तार नहीं है। जहाँ अलङ्कार-कौशल का अवसर अथवा वाग्विलास का प्रसङ्ग मिला है वहाँ तो विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है और जहाँ कथा की घटनाओं की विचित्रता है वहाँ कवि मौन हो गया है। अतः रामचन्द्रिका की कथा-वस्तु में काव्य-चातुर्य स्थान-स्थान पर देखने को तो अवश्य मिलता है पर चरित्र-चित्रण या कथा की प्रबन्धात्मकता के दर्शन नहीं होते।

केशव का प्रकृति-चित्रण बहुत व्यापक है। उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अलङ्कार के प्रयोग से प्रकृति के दृश्य बहुत सुन्दर रीति से प्रस्तुत किये हैं।

७—रामकृष्ण शुक्ल

केशवदास में कवित्व की दोनों प्रकार की सामर्थ्य थी— भावात्मक भी और व्याख्यात्मक भी। परन्तु केशवदास का, या हिंदी साहित्य का, दुर्भाग्य था कि उनको परिस्थितियाँ विपरीत मिलीं, जिनके कारण उनके यथार्थ गुण तो दब गये और कृत्रिम गुणाभासों की वृद्धि हो गयी। उनके प्रच्छन्न गुणों को देखते हुये उनकी 'महाकवि' पदवी का अनुमोदन किया जा सकता है तथा उनके रचना-वैचित्र्य

को देखते हुए शायद 'आचार्य' का भी। परन्तु यदि सब बातों पर अेक साथ विचार किया जायगा तो हिन्दी की लम्बी कवि-सूची में उन्हें शायद मध्यम श्रेणी का ही कवि गिना जा सकेगा।

(८) पीतांबर दत्त बड़थ्वाल

मनुष्य-जीवन तो उनकी आँखों में कुछ पड़ ही गया था पर प्रकृति में अंतर्हित जीवन का स्पंदन वे नहीं देख पाये।

प्रकृति के जितने भी वर्णन उन ने दिये हैं वे प्रकृति-निरीक्षण से प्रभावित होने का ज़रा भी परिचय नहीं देते।

उनकी कल्पना मस्तिष्क की उपज-मात्र है, हृदय-जात नहीं।

उन की व्रज-भाषा बहुत-कुछ ऊबड़-खाबड़ है।

केशव जी में विचारों की पुष्टता है, कल्पना की उड़ान है, यद्यपि सम्वेदन-शीलता-जन्य रागात्मिकता का सर्वथा अभाव नहीं है फिर भी प्रायः अभाव ही सा है। निरीक्षण भी उनका अेकदेशीय है...... मनुष्य की मनोवृत्तियों पर उनका यथेष्ट अधिकार नहीं है और प्रकृति-निरीक्षण तो उन में है ही नहीं। भाषा भी उनकी काव्योपयोगी नहीं है, माधुर्य और प्रसाद गुण से तो जैसे वे खार खाये बैठे थे। परंतु उन के नाम और उन की करामात का अैसा जादू है कि उन्हें महाकवि केशवदास कहे बिना जी ही नहीं मानता। ......परन्तु यदि आदत से विवश होकर इस उपाधि का साहित्य-साम्राज्य में प्रयोग आवश्यक ही हो तो उसे तुलसी और सूर के लिअे सुरक्षित रखना चाहिअे। हाँ हिंदी के नव-रत्नों में (कवि-रत्नों में नहीं) केशव का स्थान वाद-विवाद की सीमा के बाहर है क्योंकि साहित्यशास्त्र की गम्भीर चर्चा के द्वारा उन ने हिंदी के साहित्य-क्षेत्र में अेक नवीन ही मार्ग खोल दिया है... .....।

—००—

संक्षिप्त केशव



मंगलाचरण

गणेश-वन्दना

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै अलंक-अंक भव-सीस-ससि सम
राखत है, केसौदास, दास के वपुख को।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
दसमुख-मुख जोवैं गजमुख-मुख को ॥१॥

सरस्वती-वन्दना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिसि-राज तपवृद्ध,
कहि-कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।

भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केसौदास, केहू ना बखानी काहू पै गई।
बर्नै पति चार मुख, पूत बर्नै पाँच मुख,
नाती बर्नै खट मुख, तदपि नई-नई ॥२॥

श्रीराम-वन्दना

पूरन पुरान अरु पुरुख पुरान,
परिपूरन बतावैं, न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समुझैं न,
नेति-नेति कहैं वेद छाँडि आन जुक्ति को।
जानि यह केसौदास अनुदिन राम-राम
रटत रहत, न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देइ अनिमाहि, गुन देइ गरिमाहि,
भक्ति देइ महिमाहि, नाम देइ मुक्ति को॥३॥

रामचन्द्रिका

(१) रावण-बाण-संवाद

सबही को समझो सबनि बल-विक्रम-परिमान।
सभा मध्य ताही समय आये रावन-बान ॥१॥
नरनारि सबै। भयभीत तबै ॥
अचरज्जु यहै। सब देखि कहैं ॥२॥
है राकस दससीस को, दैयत बाहु हजार।
कियो सबनि के चित्त रस अद्भुत भय संचार ॥३॥

रावण

संभु-कोदंड दै। राजपुत्री कितै?
टूक द्वै-तीनि कै। जाहुँ लंकाहि लै ॥४॥

बन्दीजन

दससिर, आओ। धनुस उठाओ ॥
कछु बल कीजै। जग जस लीजै ॥५॥

बाण

दसकंठ रे सठ, छाँडि दै हठ, बार-बार न बोलियै।
अब आजु राज-समाज में बल साजु, चित्त न डोलियै ॥

गिरिराज तें गुरु जानियें, सुरराज को धनु हाथ लै।
सुख पाइ ताहि चढ़ाइकै घर जाहि रे जस साथ लै ॥६॥

वानी कही वान। कीन्हो न सो कान॥
अद्यापि आनी न। रे वन्दि कानीन ॥७॥

वाण

जु पै जिय जोर। तजौ सव सोर॥
सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि ॥८॥

रावण

वज्र को अखर्व गर्व गंज्यो जेहि, पर्वतारि
जीत्यो है, सुपर्व सर्व भाजे लै-लै अंगना।
खंडित अखंड आसु कीन्हो है जलेस-पासु,
चन्दन सी चन्द्रिका सों कीन्ही चन्द-वन्दना।
दंडक में कीन्हों काल दंडहू को मान खंड,
मानो कीन्ही काल ही की काल खंड-खंडना।
केसव, कोदंड विसदंड ऐसो खंडै अव,
मेरे भुजदंडन की वड़ी है विडम्वना ॥९॥

वाण

वहुत वदन जा के। विविध वचन ता के।

रावण

वहु भुज-जुत जोई। सवल कहिय सोई ॥१०॥

अति असार भुज भार ही बली होहुगे, बान।

बाण

मम बाहुन को जगत में सुनु, दसकंठ, विधान ॥११॥

हौं जब हीं जब पूजन जात पिता-पद पावन पाप-प्रनासी।
देखि फिरौं तब हीं तब, रावन, सातों रसातल के जे बिलासी॥
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छितिमंडल छत्र प्रभा सी।
जानै को, केसव, केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उसांसी ॥१२॥

रावण

तुम प्रबल जो हुते। भुजबलनि संजुते।
पितहि भुव ल्यावते। जगत जस पावते ॥१३॥

बाण

पितु आनिये केहि ओक। दिये दच्छिना सब लोक।
यह जानु रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन ॥१४॥

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेइ मार्यो।
लोक-चतुर्दस-रच्छक केसव पूरन बेद-पुरान बिचार्यो।
श्री कमला-कुच-कुंकुम-मंडन-पंडित देव - अदेव निहार्यो।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसार्यो ॥१५॥

रावण

हमहिं तुमहिं नहिं बूझियै बिक्रम-बाद अदंड।
अब ही यह कहि देइगो मदन-कदन-कोदंड ॥१६॥

ब्रत बान-रावन को सुन्यो। सिर राज-मण्डल में धुन्यो।

विमति—

जगदीश अब रच्छा करो। बिपरीत बात सबै हरो ॥१७॥

रावन-बान महाबली, जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु करसिहैं, ता को कहा बिचार॥१८॥

बाण—

केसव, और तें और भई, गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आयो, मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी।
बाढ़ि गयो बकबाद बृथा, यह भूलि न, भाट, सुनावहि गारी।
चाप चढ़ाइहौं कीरति को, यह राज करै तेरी राजकुमारी॥१९॥

रावण—

मो कहँ रोकि सकै कहु को रे। जुद्ध जुरे जम हू कर जोरै।
राजसभा तिनुका करि लेखौं। देखि कै राज-सुता धनु देखौं॥२०॥

बाण—

बान कह्यो तब रावन सों, अब बेगि चढ़ाउ सरासन को।
बातैं बनाइ-बनाइ कहा कहै, छोड़ि दे आसन-बासन को।
जानत है किधौं जानत नाहिन, तू अपने मद नासन को।
ऐसेहि कैसे मनोरथ पूजत, पूजे बिना नृप-सासन को॥२१॥

रावण—

बान, न बात तुम्हैं कहि आवै।

बाण—

सोई कहौ जिय तोहि जो भावै ?

रावण—

का करिहौ, हम योंही बरैंगे ?

वाण —

हैहयराज करी सो करैंगे ॥२२॥

रावण—

भौंर ज्यौं भँवत भूत-वासुकी-गनेस-जुत,
मानो मकरंद-बुंद-माल गंगा-जल की।
उड़त पराग पट, नाल सी विसाल वाहु,
कहा कहौं केसौदास सोभा पल पल की।
आयुध सघन सर्व-मंगला समेत सर्व-
पर्वत उठाय गति कीन्ही है कमल की।
जानत सकल लोक लोकपाल दिगपाल,
जानत न वान, वात मेरे वाहुवल की ॥२३॥

तजि कै सु-रारि। रिस चित्त मारि॥
दसकंठ आनि। धनु छुयो पानि ॥२४॥

विमति—

तुम वल-निधान । धनु अति पुरान॥
पीसजहु अंग । नहिं होइ भंग ॥

खंडित मान भयो सब को, नृप-मंडल हारि रह्यो जगती को।
व्याकुल वाहु, निराकुल वुद्धि, थक्यो वल-विक्रम लंकपती को।
कोटि उपाय किये, कहि केसव, केहूँ न छाँड़त भूमि रती को।
भूरि विभूति-प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित जोगजती को॥२६।

धनु अति पुरान लंकेस जानि। यह बात वान सों कही आनि।
हौं पलक माँहि लेहौं चढ़ाइ। कछु तुमहूं तो देखो उठाइ ॥२७॥

बाण—

मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माइ।
दुहू भाँति असमंजसै, बान चले सुख पाइ ॥२८॥

रावण—

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तौ लगि, नेम धरौं।
जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत सब्द हते तन को ॥२९॥
काहु कहूँ सर आसर मारयो। आरत सब्द अकास पुकारयो।
रावन के वह कान परयो जब। छोड़ि स्वयंवर जात भयो तब ॥३०॥

जब जान्यो सब को भयो, सब ही बिधि ब्रत भंग।
धनुस धरयो लै भवन में, राजा जनक अनंग। ३१॥

————

(२) लंका में हनुमान

हरि कैसो वाहन कीं विधि कैसो हेस-हंस,
लीक सों लिखत नभ पाहन के अंक कों।
तेज को निधान राम-मुद्रिका-विमान, कैधौं
लच्छमन को वान छूट्यो रावन निसंक कों।
गिरि-गज-गंड तें उड़ान्यो सुबरन-अलि
सीता - पद-पंकज सदा कलंक-रंक को।
हवाई सी छूटी, केसौदास, आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥१॥

उदधि नाकपतिसत्रु को उदित जानि वलवन्त।
अन्तरिच्छ हीं लच्छि पद अच्छ छुयो हनुमन्त ॥२

वीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥३॥

कछु राति गये करि दंस-दसा सी।
पुर माँझ चले वनराजि-बिलासी ॥
जव हीं हनुमन्त चले तजि संका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तव लंका ॥४॥

लंका

कहि, मोहि उलंघि चले तुम को हौ ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ।

पठये केहि कारन कौन चले हौ ?
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेस भले हौ ? ॥५॥

हनुमान्

हम बानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुनी अवलोकन आये॥

लंका

हति मोहि महामति भीतर जैयै।

हनुमान्

तरुनीहि हते कब लौं सुख पैयै ॥६॥

लंका

तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहो।
हठ कोटि करो, घरहीं फिरि जैहो॥
हनुमन्त बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तब ही वर नारी ॥७॥

लंका

धनदपुरी हौं रावन लीन्ही।
बहु बिधि पापन के रस भीनी॥
चतुरानन चित चिंतन कीन्हो।
यह करुना करि मो कहँ दीन्हो ॥८॥

जब दसकंठ सिया हरि लैहै।
हरि हनुमंत बिलोकन ऐहै॥
तब वह मोहि हनै तजि संका।
तब प्रभु होइ बिभीषन लंका ॥९॥

चलन लगौ जबही तब कीजौ।
मृतक सरीरहि पावक दीजौ॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी॥१०॥

तब हरि रावन सोवत देख्यो।
मनिमय पलका की छवि लेख्यो॥
तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावैं।
बिच-बिच आवझ बीन बजावैं॥११॥

मृतक चिता पर मानहु सोहै।
चहुँ दिसि प्रेतबधू मन मोहैं॥
जहँ-तहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरौ घर सूनो॥१२॥

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी-आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ जच्छिनी पच्छिनी को पढ़ावैं।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावैं॥१३॥

पियै एक हाला, गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रसाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावै सुवा लै सुकी-सारिका को॥१४॥

फिर्‌यो देखिकै राजसाला सभा को।
रह्यो रीझिकै वाटिका की प्रभा को॥

फिर्यो ओर चौंहूँ चितै सुद्ध गीता।
विलोकी भली सिंसिपा-मूल सीता ॥१५॥

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृनाली मनो पंक सों काढ़ि डारी ॥
सदा राम-नामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी ॥१६॥

असी बुद्धि सी चित्त-चिंतानि मानो।
किधौं जीभ दन्तावली में बखानो ॥
किधौं घेरिकै राहु-नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूष-भीनी ॥१७॥

किधौं जीव की ज्योति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी ॥
मनो संबर-स्त्रीन में काम-बामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा ॥१८॥

तहीं देव-द्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो ॥
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो ॥१९॥

रावण

सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोच तौ राम-काजै न कीजै ॥

बसैं दंडकारन्य, देखै न कोऊ।
जो देखै महाबावरो होइ सोऊ ॥२०॥

कृतघ्नी कुदाता कु-कन्याहि चाहै।
हितू नग्न-मुंडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यौ मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी - जटी - मुंडधारी ॥२१॥

तुम्हैं देवि दूखै, हितू ताहि मानै।
उदासीन तो सों सदा ताहि जानै॥
महानिर्गुनी नाम ता को न लीजै।
सदा दास मो पै कृपा क्यों न कीजै ॥२२॥

अदेवी - नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघौनी मृड़ानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेसी नचैं उर्वसी मान पावैं ॥२३॥

त्रिन बिच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दसमुख सठ, को तू? कौन की राजधानी?
दसरथ-सुत-द्वेषी रुद्र - ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यौं न स्यौं मूल नासै ॥२४॥

अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल, खर-सर-धारा क्यौं सहै तिच्छ ताकी॥
बिड़-कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै?
सिवसिर ससि-श्री कों राहु कैसे सो छीवै ॥२५॥

उठि-उठि, सठ, ह्याँ तें भागु तौ लौं अभागे।
मम वचन विसर्पी सर्प जौ लौं न लागे॥

विकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो।
निपट मृतक, तो को रोस मारै न मेरो॥२६॥

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राच्छसिन बोलि।
ज्यौं समुझै समुझाइयो, जुक्ति-छुरी सौं छोलि॥२७॥

देखि-देखि कै असोक राजपुत्रिका कह्यो।
देउ मोहि आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यो॥
टौंग पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस-पास देखि कै उठाइ हाथ कै लई॥२८॥

जब लगी सियरी हाथ।
यह आगि कैसी, नाथ!
यह कह्यौ लखि नव नाहि।
मनि-जटित मुँदरी आहि॥२९॥

जब बाँचि देख्यौ नाउ।
मन पर्यौ संभ्रम-भाउ॥
आकास में रघुनाथ।
गहि भरी अपने हाथ॥३०॥

चहुँ ओर चितै सत्रास।
अवलोकियौ आकास॥
तहँ साख बैठो नीठि।
तब पर्‌यो बानर डीठि॥३२॥

तब कह्यो, को तू आहि।
सुर असुर मो तन चाहि॥
कै जच्छ, पच्छ-विरूप।
दसकंठ बानर-रूप॥३३॥

कहि आपनौ तू भेद।
न तु चित्त उपजत खेद॥
कहि बेगि बानर, पाप।
न तु तोहिं देहौं साप॥
उरि वृच्छ-साखा भूमि।
कपि उतरि आयो भूमि॥३४॥

कर जोरि कह्यौ—'हौं पवन-पूत।
जिय, जननि, जानु रघुनाथ दूत'॥
'रघुनाथ कौन?' 'दसरत्थ-नन्द'
'दसरत्थ कौन?' 'अज-तनय चन्द'॥३५॥

'केहि कारन पठये यहि निकेत?'
'निज देन लेन सन्देस हेत॥'
'गुन रूप सील सोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लच्छन बताउ'॥३६॥

'अति जदपि सुमित्रा-नन्द भक्त।
अति सेवक हैं अति सूर सक्त॥
अरु जदपि अनुज तीन्यौं समान।
पै तदपि भरत भावत निदान॥२७॥

ज्यौं नारायन उर श्री बसंति।
त्यौं रघुपति उर कछु दुति लसंति॥
अग जितने हैं सब भूमि भूप।
सुर-असुर न पूजैं राम-रूप॥२८॥

सीता

तोहि परतीति यहि भाँति नहिं आवई।
प्रीति कहि धौं सु नर-बानरनि क्यौं भई॥
बात सब बरनि परतीति हरि त्यौं दई।
आनि अंकवार उर लाइ सुंदरि लई॥२९॥

राज - पुत्रि, इक वात सुनो पुनि।
रामचंद्र मन माँह कही गुनि॥
राति दीह जमराज - जनी जनु।
जातनानि तन जानत कै मनु॥४३॥

दुख देखे सुख होहिगो, सुक्ख न दुक्ख विहीन।
जैसे तपसी तप तपे, होत परमपद लीन॥४४॥

वरसा - वैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन में काल भट भेंटि भेंटियत वाम॥४५॥

दुक्ख देखिकैं देखिहौं तव मुख आनँद-कंद।
तपन ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चंद॥४६॥

अपनी दसा कहा कहौं, दीप - दसा सी देह।
जरत जाति वासर-निसा, केसव, सहित सनेह॥४७॥

कछु, जननि, दे परतीति जा सों रामचंद्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई, यह कहि–सुजस तव जग गावई।
सव काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत, आज तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ॥४८॥

कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जंवुमाली मंत्रिसुत्त अरु पंच मंत्रि सँहारियो॥
रन मारि अच्छकुमार वहु विधि इंद्रजित सों जुद्ध कै।
अति ब्रह्मसस्त्र प्रमान मानि सो वस्य भो मन सुद्ध कैं॥४९॥

'रे कपि कौन तू अच्छ को घातक ?' 'दूत बली रघुनन्दन जू को।'
'को रघुनन्दन रे ?' 'त्रिसिरा-खर-दूखन-दूखन भूखन भू को॥'
'सागर कैसे तर्‌यो?''जैसे गोपद','काज कहा?''सिय-चोरहि देखौं।'
'कैसे बँधायो ?''जो सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत, पातक लेखौं'॥५०॥

रावण

कोरि कोरि जातनानि फोरि-फारि मारियै।
काटि-काटि फारि माँसु बाँटि-बाँटि डारियै॥
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौरि टाँगि रुंड, मुंड लै उड़ाइ जाहु रे॥५१॥

विभीषण

दूत मारियै न राजराज, छाँड़ि दीजई।
मंत्रि मित्र पूँछि कै सो और दंड कीजई॥
एक रंक मारि क्यौं बड़ो कलंक लीजई।
बुंद सोखि गो कहा महा - समुद्र छीजई॥५२॥

तूल तेल बोरि-बोरि जोरि-जोरि बाससी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी॥
पूँछ पौनपूत की सँवारि वारि दी जहीं।
अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं॥५३॥

धाम-धामनि आगि की बहु ज्वाल-माल विराजहीं।
पौन के झकझोर तें झँझरी झरोखन भ्राजहीं॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों बिपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं॥५४॥

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है यों।
सरत्काल के मेघ संध्या-समै ज्यों।
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं।
मनो स्वर्न की किंकिनी नाग साजैं ॥५५॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनौ ईस-रोसाग्नि मैं काम डाढ़े॥
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं॥५६॥

कहूँ भौन राते रचे धूम-छाहीं।
ससी-सूर मानौं लसैं मेघ माहीं॥
जरैं सस्त्रसाला मिली गंधमाला।
मलै-अद्रि मानौ लगी दाव-ज्वाला॥५७॥

चली भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिलीं ज्वाल-माला फिरैं दुक्खदानी॥
मनो ईस-बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायान के संग डोलैं॥५८॥

लंक लगाइ दई हनुमंत त्रिमान बचे अति उच्चरुखी है।
पावक मैं उचटैं बहुधा मनि, रानी रटैं 'पानी-पानी' दुखी है॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि मैं पसरो सो सुखी है।
गंग हजारमुखी गुनि, केसौ, गिरा मिली मानौ अपार-मुखी है॥५६

हनुमत लाई लंक सब, बच्यो बिभीषन-धाम।
ज्यौं अरुनोदय-बेर में, पंकज पूरब-जाम॥६०॥

(३) अंगद-रावण-संवाद

अंगद कूदि गये जहाँ आसनगत लंकेस ।
मनु मधुकर करहाट पर सोभित स्यामल बेस ॥१॥

प्रतिहार

पढ़ौ, बिरंचि, मौन वेद; जीव, सोर छंडि रे।
कुवेर, वेर कै कही, न जच्छ-भीर मंडि रे॥
दिनेस, जाय दूरि बैठि नारदादि संगही ।
न बोलु, चंद मंद-बुद्धि, इन्द्र की सभा नहीं ॥२॥

अंगद यों सुनि बानी।
चित्त महा रिस आनी॥
ठेलि कै लोग अनैसे।
जाय सभा महँ बैसे ॥३॥

कौन हो, पठये सो कौने, ह्याँ तुम्हैं कहा काम है ?
जाति बानर, लंकानायक, दूत, अंगद नाम है॥
कौन है वह, बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही ?
लंक जारि सँहारि अच्छ गयो, सो बात वृथा कही ? ॥४॥

कौन भाँति रहौ तहाँ तुम ?, राज-प्रेषक जानिये ।
लंक लाइ गयो जो बानर, कौन नाम बखानिये ।

मेघनाद जो बाँधियो वहि, मारियो बहुधा तबै।
लोक-लाज दुरयो रहै अति, जानियै न कहाँ अबै ॥५॥

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि, न जानिये।
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये॥
है कहाँ वह ? वीर अंगद देव-लोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-विमान बैठि सिधाइयो ॥६॥

लंकनायक को ? विभीखन, देवदूखन को दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै ?
मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरियै जानिये।
कौन बात पठाइयो, कहि वीर बेगि बखानिये ॥७॥

श्रीरघुनाथ को बानर केसव आयो हो एक, न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि गयो जू।
सीय निहारि सँहारि कै राच्छस सोक असोकबनीहि दयो जू।
अच्छकुमारहि मारकै लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयो जू ॥८॥

राम राजान के राज आये इहाँ
धाम तेरे, महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दै मित्र-
मंत्री जिते, पूँछि देखो सबै।
राखियै जाति को, पाँति को, बंस को,
गोत को, साधियै लोक-परलोक को।
आनि कै पाँ परो, देस लै, कोस लै,
आसुही ईस-सीता चलैं ओक को ॥९॥

लोक लोकेस ज्यों जो-जो ब्रह्मा रचे,
आपनी आपनी सींव सो-सो रहैं।

चारि बाहैं धरे विस्नु रच्छा करैं,
बात साँची यहै बेद-बानी कहैं।
ताहि भ्रू भंग ही देव-देवेस स्यों,
विस्नु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै।
ताहि हौं छोड़ि कै पाँय काके परौं,
आजु संसार तो पाँय मेरे परै ॥१०॥

राम को काम कहा? रिपु जीतहिं, कौन कवै रिपु जीत्यौ कहां।
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन-गर्ब हर्यों, द्विज दीन महा॥
दीन सु क्यों छिति-छत्र हत्यो, बिन प्रानन हैहयराज कियो।
हैहय कौन? वहै विसर्यो?, जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो ॥११॥

सिंधु तर्यो उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बानर बाँधत, सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँधि के बाट करी।
श्रीरघुनाथ प्रताप की बात तुम्हैं, दसकंठ, न जानि परी।
तेलहु-तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ॥१२॥

छोंडि दियो हम ही बनरा वह, पूंछ की आगिन लंक जरी।
भीर में अच्छ मर्यो चपि बालक, बादिहि जाय प्रसस्ति करी।
ताल त्रिधे अरु सिंधु बँध्यो, यह चेटक, विक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा, पल में सुरनायक बाँधि लियो ॥१३॥

चेटक सों धनु भंग कियो, तन रावन के अति ही बलु हो।
बान समेत रहे पचिकै तहँ जा सँग, पै न तज्यो थलु हो॥
बान सु कौन? बली बलि को सुत, वै बलि बाँधन बाँधि लियो।
वेई सु तौ जिनकी चिर-चेरिन नाच नचाइ कै छोंड़ि दियो ॥१४॥

नील सुखेन हनू उनके नल, और सबै कपिपुँज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पटु लै, पितु जा लगि मारे॥
तो से सपूतहि जाय कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद, संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपुमारे॥१५॥

जो सुन अपने आप को बैर न लेइ प्रकाम।
तासों जीवत ही मरथो लोग कहैं तजि आस॥१६॥

इनको बिलगु न मानिये कहि केसव पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु॥१७॥

उरसि, अंगद, लाज कछू गहौ।
जनक-घातक बात बृथा कहौ॥
सहित लक्ष्मन रामहिं संहरौं।
सकल बानर-राज तुम्हें करौं॥१८॥

सत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूतविधि नूत कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि 'अभिलाख अभिलाखहू।
राखि भुज-सीस तव 'और कहँ राखहू॥१९॥

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे।
तेरो कह्यो, दूत, सबै सहौं रे॥
वै जो सबै चाहत तोहि मारयो।
मारौं कहा तोहिं जो दैव मारयो॥२०॥

नराच श्रीराम जहीं धरैंगे।
असेस माथे कटि भू परैंगे॥

सिखा सिवा-स्वान गहे तिहारी ।
फिरैं चहूँ ओर निरैं-विहारी ॥२१॥

महामीचु दासी सदा पाँइ धोवै ।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै ॥
छपानाथ लीन्हें रहैं छत्र जाको ।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ॥२२॥

सका मेघमाला, सिखी पापकारी ।
करै कोतवारी महादंडधारी ॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके ।
कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ॥२३॥

पेट चढ़्यौ पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौ रे ।
चौक चढ़्यौ चित्रसारि चढ़्यौ गजवाजि चढ़्यौ गढ़-गर्व चढ़्यौ रे ॥
व्योम विमान चढ़्यौई रह्यौ, कहि केसव, सो कबहूँ न पढ़्यौ रे ।
चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सों, चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौ रे ॥२४॥

निकार्‌यो जु भैया लियो राज जाको ।
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको ॥
लिये बानराली, कहौं बात तोसों ।
सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसों ॥२५॥

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहै ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ सँग रैहै ॥
केसव काम को राम बिसारत, और निकाम ते काम न ऐहै ।
चेति रे चेति अजौं चित-अंतर, अंतक-लोक अकेलोई जैहै ॥२६॥

डरै गाय विप्रै, अनाथै जो भाजै।
पर-द्रव्य छाँड़े, परस्त्रीहि लाजै॥
पर-द्रोह जासों न होवै रती को।
सो कैसे लरै वेस कीन्हे जती को॥२७॥

ंद करथौं में खेल को, हरिगिरि केसोदास।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥२८॥

जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि,
ऐसे कोटि कपिन के वालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ,
मगर के खेल क्यों सुभट-पद पावहीं॥
जीत्यो जो सुरेस-रन साप रिसि-नारि हू को,
समझहु हम द्विज-नाते समझावहीं।
गहौ राम-पाइँ सुख पाइ करौ तपी तप,
सीता जू को देहु, देव दुंदुभी वजावहीं॥२९॥

तपी जपी विप्रन छिप्रही हरौं।
अदेव-द्वेषी सब देव संहारौं॥
सिया न देहौं, यह नेम जो धरौं।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं॥३०॥

न ते पतिनी करी पावन, टूक कियो धनुहू हर को रे।
-बिहीन करी छन में छिति, गर्व हर्यौ तिनके वर को रे॥
।-पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहूं धरको रे।
नरायन हू पै न ये गुन, कौन इहाँ नर, वानर को रे॥३१॥

देहिं अंगद राज तोकहँ मारि बानर राज को।
बाँधि देहिं बिभीखनै अरु फोरि सेतु-समाज को॥
पूँछ जारहिं अच्छरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहिं, पार जाइँ समुद्र के॥३२॥

लंक लाय दियो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर-छींट बहाइयो॥
ताहि तोहि समेत अंध, उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीखन बैठिहै तेहि तें डरौं॥३३॥

अंगद रावन को मुकुट लै करि उड़ो सुजान।
मनो चल्यो जमलोक को दससिर को प्रस्थान॥३४॥

—:०:—

(४) रामाश्वमेध

विश्वामित्र वसिस्ठ सों एक समै रघुनाथ।
आरंभ्यो, केसव, करन अश्वमेध की गाथ ॥१॥

राम

मैथिली समेत तौ अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक जग्य मैं कियो॥
सीय-त्याग-पाप तें हिये सु हौं महा डरौं।
और एक अवमेध जानकी बिना करौं॥२॥

धर्म-कर्म कछु कीजई, सफल तरुनि के साथ।
ता बिनु जो कुछ कीजई, निसफल सोई, नाथ॥३॥

करिये जुत भूखन रूपरयी,
मिथिलेस-सुता इक स्वर्नमयी।
रिसिराज सबै रिसि बोलि लिये,
सुचि सों सब जग्य विधान किये॥४॥

हयसालन तें हय छोरि लयो,
ससि वर्न सो केसव सोभरयो।
श्रुति स्यामल एक विराजतु है,
अलिस्यों सरसीरुह लाजतु है॥५॥

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत, पट्ट बाँधिय भाल ।
भूखि भूखन सत्रुदूखन छाँड़ियो तेहि काल ॥
संग लै चतुरंग सैनहि सत्रुहन्ता साथ ।
भाँति-भाँतिन मान दै पठये सु श्री रघुनाथ ॥६॥

जात है जित वाजि, केसव, जात हैं तित लोग ।
बोलि विप्रन दान दीजत जत्र-तत्र सभोग ॥
वेनु-बीन मृदंग बाजत, दुंदुभी बहु भेव ।
भाँति-भाँतिन होत मंगल देव से नर-देव ॥७॥

राघव की चतुरंग चमू-चय, को गनै केसव, राज समाजनि ।
सूर-तुरंगन के उरझैं पग, तुंग पताकनि की पट साजनि ॥
टूटि परैं तिन तें मुकता धरनी, उपमा बरनी कविराजनि ।
बिन्दु किधौं मुखफेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि ॥८॥

राघव की चतुरंग चमू चपि धूर उठी, जलहू थल छाई ।
मानो प्रताप-हुतासन-धूम सो, केसवदास, अकास नमाई ॥
मेटि कै पंच प्रभूत किधौं विधि रेनुमयी नव रीति चलाई ।
दुक्ख-निवेदन को भुव-भार की भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥९॥

नाद पूरि, धूरि पूरि, तूरि बन, चूरि गिरि,
सोखि-सोखि जल भूरि भूरि थल-गाथ की ।
केसौदास आस-पास ठौर-ठौर राखि जन,
तिन की संपति सब आपने ही हाथ की ।
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
सत्रुन की जीविका ऽनि मित्रन के साथ की ।

मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि-दिसि जीति सेना रघुनाथ की ।।१०।।

दिसि विदिसिन अवगाहि कै, सुख ही केसवदास ।
वालमीकि के आस्रमहिं, गयो तुरन्त प्रकास ।।११।।

दूरिहि ते मुनि - वालक धाये,
पूजित वाजि विलोकन आये ।
भाल को पट्ट जहीं लव वाँच्यो,
वाँधि तुरंगम जयरस राच्यो ।।१२।।

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः ।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं वली ।।१३।।

घोर चमू चहुँ ओर तें गाजी,
कौनेहि रे यह वांधियो वाजी ।।
बोल उठे लव, मैं यहि वाँध्यो,
यों कहिकै धनुसायक साँध्यो ।।
मारि भगाय दिये सिगरे यों,
मन्मथ के सर ज्ञान घने ज्यों ।।१४।।

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये,
कोदंड लीन्हे महा-रोस छाये ।
ठाढ़ो तहाँ एक वालै विलोक्यो,
रोक्यो तहीं जोर नराच मोक्यो ।।१५।।

शत्रुघ्न

वालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरंगम ।
तो सों कहा करौं संगर-संगम ।।

ऊपर वीर, हिये करुना रस।
वीरहि विप्र हते न कहूँ जस ॥१६॥

लव

कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरे,
लव सों न जुरो लवनासुर भोरे।
द्विज दोस, नहीं बल, ताहि सँहारयो,
मरही जु रहो सु कहा तुम मारयो ॥१७॥

रामबन्धु बान तीनि छाँड़ियो त्रिसूल से।
भाल में विसाल ताहि लागियो ते फूल से ॥

लव

घात कीन्ह, रात-तात, गात तैं कि पूजियो।
कौन सत्रु तू हत्यो, जु नाम सत्रुहा लियो ॥१८॥

रोस करि बान बहु भाँति लव छंड़ियो।
एक ध्वज, सूत युग, तीन रथ खंडियो ॥
सस्त्र दशरत्थसुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सियपुत्र तिल-तूल सम खंडरै ॥१६॥

रिपुहा तब बान वहै कर लीन्हो।
लवनासुर को रघुनन्दन दीन्हो ॥
लव के उर में उरभ्यो वह पत्री।
मुरछाइ गिरायो धरनी महँ छत्री ॥२०॥

मोहे लव भूमि परे जबहीं,
जै-दुंदभि बाजि उठे तबहीं।
भू तें रथ ऊपर आनि धरे,
सत्रुघ्न सु यों कहनाहि भरे ॥२१॥

घोरो तबही तिन छोरि लयो,
सत्रुघ्नहि आनंद चित्त भयो।
लैकें लव को ते चले जबहीं,
सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥२२॥

बालक

सुनु, मैथिली, नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि।
चतुरंग सेन भगाइ कै सब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गो सर एक को भुव में गिरो मुरझाय।
लव बाजि लै लव लै, चल्यो, नृप दुंदुभीन बजाय ॥२३॥

सीता गीता पुत्र की सुनि कै भई अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका मन-क्रम-वचन समेत ॥२४॥

रिपुहाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यों परै, करतार।
पतिदेवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार॥
रिसि हैं नहीं, कुस है नहीं, लव लेइ कौन छँड़ाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुस आइयो अकुलाइ ॥२५॥

कुश

रिपुहि मारि संहारि दल यम तें लेहुँ छँड़ाइ।
लवहि मिले हौं देखिहौं, माता, तेरे पाइ ॥२६॥

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बाल बली बरसो बर पेरयो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु, जात न जा तन हेरयो ॥
साल समूल उखारि लिये लवनासुर, पीछे ते आइ सो टेरयो।
राघव को दल मत्त करीस्वर, अंकुस दै कुस, केसव, फेरयो ॥

कुस की टेर सुनी जहीं, फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतंग ज्यों, जदपि भयो बहु विघ्न ॥२८॥

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुस।
उर माँझ हयो सर जुद्ध निरंकुस ॥
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही सर।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज-कलेवर ॥२९॥

जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन।
भाजि गये तबही भट के गन ॥
काढ़ि लियो जबहीं लव को सर।
कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥३०॥

मिले जु कुस लव कुसल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रन महि ठाढ़े सोभिजैं, पसुपति - गनपति तूल ॥३१॥

जग्य मंडल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अंग कुरंग को, सुभ स्वर्न की सँग बाल ॥
आस पास ऋषीस सोभित, सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरनी, जुद्ध की सब गाथ ॥३२॥

भग्गुल

बालमीकि-थल बाजि गयो जू।
बिप्र बालकनि घेरि लयो जू ॥

एक बाँधि पटु घोटक बाँध्यो।
दौरि दोह धनु-सायक साँध्यो ॥३३॥

भाँति भाँति सब सैन सँहारयो।
आपु हाथ जनु ईस सँवारयो॥
अस्त्र-सस्त्र तुव बन्धु जु धारयो।
खंडखंड करि ता कहँ डारयो ॥३४॥

रोष-वेष वह बान लयो जू।
इन्द्रजीत लगि आपु दयो जू॥
काल-रूप उर माहिं हयो जू।
वीर मूर्छि तब भूमि भयो जू ॥३५॥

वहि वीर लै अरु बाजि।
जबही चले दल साजि॥
तब और बालक आनि।
मग रोकियो तजि कानि ॥३६॥

तेइ मारियो तुव बन्धु।
दल ह्वै गयो सब अंधु॥
वहि बाजि लै अरु वीर।
रन में रह्यो रुपि धीर ॥३७॥

बुधि बल बिक्रम रूप गुन, सील तुम्हारे, राम।
काकपच्छ-धर बाल ह्वै जीते सब संग्राम ॥३८॥

राम—

गुन गुन प्रतिपालक, रिपुकुल-घालक बालक ते रनरंता।

दसरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवनासुर को हंता ॥
कोऊ द्वै मुनि-सुत काकपच्छ-जुत सुनियत है तिन मारे।
यहि जगत-जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे ॥३९॥

लच्छन सुभ लच्छन, बुद्धि बिचच्छन लेहु बाजि को सोधु।
मुनि सिसु जनि मारेहु, बंधु उधारेहु, क्रोध न करेहु प्रबोधु ॥
बहु सहित दच्छिना दै प्रदच्छिना, चल्यो परम रन धीर।
देख्यो मुनि बालक, सोदर, उपज्यो करुना अद्भुत बीर ॥४०॥

कुश—

लक्ष्मन को दल दीरघ देखौ।
कालहु तें अति भीम बिसेखौ ॥
दो में कहौ सो कहा, लव, कीजै।
आयुध लैहौ कि घोटक दीजै ॥४१॥

लव—

बूझत हौ तो यहै मतु कीजै।
मो असु दै बरु अस्व न दीजै ॥
लक्ष्मन को दल-सिन्धु निहारो।
ता कहँ बान अगस्त बिहारो ॥४२॥

एक यहै घटि है अरि घेरे।
नाहिन हाथ सरासन मेरे ॥
नेकु जहीं दुचितो चित कीन्हो।
सूर तहीं अपुनो धनु दीन्हो ॥४३॥

लै धनु बान बली तब धायो।
पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥

यों दुउ सोदर सैन सँहारैं ।
ज्यौं वन - पावक पौन विहारैं ॥४४

भागत हैं भट यौं लव आगे ।
राम के नाम तें ज्यों अघ भागे ॥
यूथपयूथ यौं मारि भगायो ।
वात वड़ो जनु मेघ उड़ायो ॥४५॥

अति रोस रसे कुस केसव, श्री रघुनायक सों रन-रीत रचैं ।
तेहि वार न वार भई, वहु वारन खर्ग हने, न गिनैं चिरचैं ॥
तहँ कुँभ फटैं, गजमोति कटैं, ते चले वहि स्रोनित रोचि रचैं ।
परि-पूरन पूर पनारन तें जनु पीक कपूरन की किरचैं ॥४६॥

भगे चये चमू चमूप छाँड़ि छाँड़ि लक्ष्मनै ।
भगे रथी महारथी गयंद-वृन्द को गनै ।
कुसै लवै निरंकुसै विलोकि वन्धु राम को
उठ्यो रिसाय कै वली वँध्यो जु लाज-दाम को ॥४७॥

कुश—

न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत ।
विलोकि तुम्हैं रन होहुँ न भीत ॥
सदा तुम लक्ष्मन उत्तमगाथ ।
करौं जनि आपनि मातु अनाथ ॥४८॥

लक्ष्मण—

कहौ कुस जो कहि आवति वात ।
विलोकत हौ उपवीतहिं गात ॥

इते पर बाल बङ्क्रम जानि।
हिये करुना उपजै अति आनि ॥४९॥

विलोचन-लोचत हैं लखि तोहि।
तजौ हठ आनि भजौ किन मोहि॥
छम्यो अपराध, अजौं घर जाहु।
हिये उपजाउ न मातहि दाहु ॥५०॥

हौं हतिहौं कबहूँ नहिं तोहीं।
तू बरु बानन बेधहि मोहीं॥
बालक-विप्र कहा हनिये जू।
लोक-अलोकन में गनिये जू ॥५१॥

लक्ष्मन हाथ हथ्यार धरो।
जग्य वृथा प्रभु को न करो॥
हौं हय को कबहूँ न तजौं।
पट्ट लिख्यो सोइ बाँचि लजौ ॥५२॥

बान एक तब लक्ष्मन छंड्यो।
चर्म वर्म बहुधा तेहि खंड्यो॥
नाहि हीन कुस चित्तहि मोहै।
धूम-भिन्न जनु पावक सोहै ॥५३॥

रोष-बैन कुस बान चलायो।
पौन-चक्र जिमि चित्त भ्रमायो॥
मोह-मोहि रथ ऊपर सोये।
मारि देखि नट-संगम गोये ॥५४॥

विराम राम जानिकै भरत्थ सों कथा कहैं।
विचारि चित्त माँहि वीर, वीर वे कहाँ रहैं।
सरोस देखि लक्ष्मनै त्रिलोक तो विलुप्त है।
अदेव-देवता त्रसैं, कहा ते बाल दीन द्वै ॥५५॥

जाहु सत्वर, दूत, लक्ष्मन हैं जहाँ यहि बार।
जाइ कै यह बात बर्नहु रच्छियो मुनि-बार॥
हैं समर्थ सनाथ, वै असमर्थ और अनाथ।
देखिबे कहँ लाइयो मुनि-बाल उत्तम-गाथ ॥५६॥

भग्गुल आइ गये तबहीं वहु।
बार पुकारत आरत रच्छहु॥
वे बहु भांतिन सैन सँहारत।
लक्ष्मन तो तिनको नहिं मारत ॥५७॥

बालक जानि तजे करुना करि।
वे अति ढीठ भये दल संहरि॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रन।
वीर अनाथ भये बिन लक्ष्मन ॥५८॥

जानहु जैं उनको मुनिबालक।
वे कोउ हैं जगती प्रतिपालक॥
हैं कोउ रावन के कि सहायक।
कै लवनासुर के हितलायक ॥५९॥

भरत

बालक रावन के न सहायक।

ना लवनासु के हित लायक ॥
हैं निज पातक-वृच्छन के फल।
मोहत है रघुवंसिन के वल ॥६०॥

जीतहि को रन माहि रिपुघ्नहि।
को करै लच्छमन के वल विघ्नहि ॥
लच्छमन सीय तजी जब तें वन।
लोक-अलोकन पूरि रहे तन ॥६१॥

छोड़न चाहत तें तब ते तन,
पाइ निमित्त करयो मन पावन।
भाइ तज्यो तन सोदर लाजनि,
पूत भये तज पाप-समाजनि ॥६२॥

पातक कौन तजी तुम सीता,
पावन होत सुने जग गीता।
दोष विहीनहिं दोष लगावै,
सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥६३॥

हौं तेहि तीरथ जाय मरौंगो,
संगति-दोष अशेष हरौंगो ॥६४

बानर राच्छस रिच्छ तिहारे
गर्व चढ़े रघुवंसहि भारे।
ता लगि कै यह बात बिचारी,
हौं प्रभु संतत गर्व प्रहारी ॥६५॥

क्रोध कै अति भरन अंगद संग संगर को चले ।
जामवंत चले विभीखन और वीर भले-भले ।।
को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी नृपता भरी ।
जाइकै अवलोकियो रण में गिरे गिरि से करी ।।६६।।

जामवंत विलोकियौ रन भीम भू हनुमंत ।
स्रोन की सरिता वही सु अनंत रूप दुरंत ।।
जत्र-तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप ।
टूटि-टूटि परे मनो वहु वात वृच्छ अनूप ।।६७।।

पुंज कुंजर सुभ्र स्यंदन सोभिजैं सुठि सूर ।
ठेलि-ठेलि चले गिरीसनि पेलि स्रोनित पूर ।।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विसाल ।
चक्र से रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल ।।६८।।

केकरे कर, वाहु मीन, गयंद सुंड भुजंग ।
चीर चौंर सुदेस केस सिवाल जानि सुरंग ।।
वालुका वहु भाँति हैं मणिमालजाल प्रकास ।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिवाल केसवदास ।।६९।।

नाम-बरन लघु, वेस लघु, कहत रीझि हनुमंत ।
इतो वड़ो बिक्रम कियो, जीते जुद्ध अनंत ।।७०।।

भरत

हनुमंत, दुरंत नदी अब नाखौ ।
रघुनाथ सहोदर जू अभिलाखौ ।

तब जो तुम सिंधुहि नांघि गये जू
अब नाँघहु काहे न, भीत भये जू ॥७१॥

हनुमान

सीता पद सनमुख हुते, गयो सिंधु के पार।
बिमुख भयो क्यों जाहुँ तरि, सुनो भरत, यहि बार ॥७२॥

धनु-बान लिये मुनि-बालक आये।
जनु मन्मथ के जुग रूप सोहाये॥
कटि के कहुँ सूरन के मद हीने।
रघुनायक मानहु द्वै वपु कीने ॥७३॥

भरत

मुनि-बालक हौ तुम जज्ञ करावो।
सु किधौं मख-बाजिहि बाँधन धावो॥
अपराध छमौ, अब आसिस दीजै।
बर बाजि तजौ, जिय रोस न कीजै ॥७४॥

बाँध्यो पट्ट जो सीस यह, क्षत्रिन काज प्रकास।
रोस करौ बिन काज तुम, हम बिप्रन के दास ॥७५॥

कुश

बालक-वृद्ध कहौ तुम का को।
देहनि को, किधौं जीव-प्रभा को।
है जड़ देह, कहैं सब कोई।
जीव सो बालक-वृद्ध न होई ॥७६॥

जीव जरै न मरै नहिं छीजै।
ता कहँ सोक कहा अब कीजै ॥
जीवहि विप्र न छत्रिय जानो।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनो ॥७७॥

जो तुम देव हमें कछु सिच्छा।
तौ हम देहिं तुम्हें हय-भिच्छा ॥
चित्त विचार परै सोई कीजै।
दोस कछू न हमें अब दीजै ॥७८॥

विप्र-बालकन की सुनि बानी।
क्रुद्ध सूरसुत भो अभिमानी ॥
विप्र-पुत्र, तुम सीस सँभारो।
राखि लेहि अब ताहि पुकारो ॥७९॥

लव

सुग्रीव, कहा तुम सों रन माँड़ौं,
तो को अति कायर जानिकै छाँड़ौं।
बालि तुम्हैं बहु नाच नचायो,
कहा रन मंडन मो सन आयो ? ॥८०॥

फल-हीन सो ता कहँ बान चलायो
अति बात भ्रम्यो, बहुधा मुरझायो।
तब दौरिकै बान बिभीखन लीन्हो।
लव ताहि बिलोकत ही हँसि दीन्हो ॥८१॥

आउ बिभीखन तू रन दूसन। एक तुही कुल को निज भूसन।
जूझि जुरे जे भले भय जी के। सत्रुहि आनि मिले तुम नीके ॥८२॥

देव-बधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो।
यों अपने जिय के डर आयो। छुद्र, सबै कुल-छिद्र बताओ ॥८३॥

जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ता की पत्नी तू करी पत्नी मातु समान। ८४॥

को जानै कै बार तू कही न ह्वैहै माइ।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राइ ॥८५॥

सिगरे जग माँझ हँसावत है,
रघुवंसिन पाप लगावत है।
धिक तो कहँ तू अजहूँ जो जियै,
खल, जाइ हलाहल क्यों न पियै।८६॥

कछु है अब तो कहँ लाज हिये,
कहि कौन विचार हथ्यार लिये।
अब जाय करीस की आगि जरो,
गुरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरो ॥८७॥

कहा कहौं हौं भरत को, जानत है सब कोइ।
तो सो पापी संग है, क्यों न पराजय होइ ॥८८॥

बहुत जुद्ध भो भरत सों, देव-अदेव समान।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन बान ॥८९॥

भरतहिं भयो विलम्ब कछु, आये श्रीरघुनाथ।
देख्यो वह संग्राम-थल, जूझि परे सब साथ ॥६०॥

रघुनाथहिं आवत आइ गये।
रन-में मुनि बालक-रूपरये ।
गुन-रूप-सुसीलनसों रन में,
प्रतिबिम्ब मनो निज दर्पन में ॥६१॥

सीता समान मुखचंद्र बिलोकि राम ।
बूझ्यो, कहाँ बसत हौ तुम, कौन ग्राम ।
माता-पिता कवन, कौनेहि कर्म कीन ।
विद्या-विनोद सिख कौनेहि अस्त्र दीन ॥६२॥

कुश

राजराज, तुम्हें कहा मम बंस सों अब काम।
बूझि लीजौ ईस-लोगन जीति कै संग्राम॥

राम

हौं न जुद्ध करौं कहे बिन विप्र-बेस बिलोकि ।
बेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥६३॥

कुश

कन्यका मिथिलेस की हम पुत्र जाये दोइ।
बालमीक असेस कर्म करे कृपा-रस भोइ॥
अस्त्र-सस्त्र सबै दये अरु वेद-भेद पढ़ाइ।
बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं, रघुराइ ॥६४॥

जानकि के मुख अक्खर आने,
राम तहीं अपने सुत जाने ।
बिक्रम साहस सील बिचारे,
जुद्ध-कथा गहि आयुध डारे ॥

राम

अंगद, जीति इन्हैं गहि ल्यावौ,
कै अपने बल मारि भगावौ ।
वेगि बुझावहु चित्तचिता को,
आजु तिलोदक देहु पिता को ॥६५॥

अंगद तौ अँग-अंगनि फूले,
पौन के पुत्र कह्यौ, अति भूले ।
जाय जुरे लव सों तरु लैकै,
बात कही सत खंडन कैकै ॥६६॥

लव

अंगद, जो तुम पै बल हो तो,
तौ वह सूरज को सुत को तो ।
देखत ही जननी जु तिहारी,
वा सँग सोवति ज्यों बरनारी ॥६७॥

जा दिन तें जुवराज कहाये,
विक्रम-बुद्धि विवेक बहाये ।
जीवत पै कि मरे पहँ जैहै,
कौन पिताहि तिलोदक दैहै ॥६ ॥

अंगद हाथ गहे तरु जोई,
जात तहीं तिल सो कटि सोई।
पर्वत-पुंज जिते उन मेले,
फूल कै तूल लै बानन झेले ।।९९।।

बानन बेधि रही सब देही,
बानर ते जु भये अब सेही।
भूतल तें सर मारि उड़ायो,
खेल के कंदुक को फल पायो ।।१००।।

सोहत है अध-ऊधर ऐसे,
होत बटा नट को नभ जैसे ।
जात कहूँ न इतै-उत पावै,
गो बल, चित्त दसो दिसि धावै ।।१०१।।

बोल घस्यो सु, भयो सुर भंगी,
ह्वै गयो अंग त्रिसंकु को संगी।
हा रघुनायक हौं जन तेरो,
रच्छहु गर्व गयो सब मेरो ।।१०२।।

दीन सुनी जन की जब बानी,
जो करुना तब बानन आनी।
छाँड़ि दियो गिरि भूमि परयोई,
व्याकुल ह्वै अति मानो मरयोई ।।१०३।।

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खरे, करतार करे कै।
भारे भिरे रन भूधर भूप, न टारे टरे, इभ कोट अरे कै।।

रोस सों खर्ग हनै कुप, केसव, भूमि गिरे न टरेहू गरे कै।
राम बिलोकि कहैं, रस अद्भुत खाये मरे नग नाग परे कै ॥१०४॥

बानर रिच्छ जिते निसिचारी,
सेन सबै इक बान सँघारी।
बान बिधे सबही जब जोये,
स्यंदन में रघुनंदन सोये ॥१०५॥

रन जोइ कै सब सीसभूखन संग्रहे जु भले-भले।
हनुमंत को अरु जामवंतहिं बाजि स्यों ग्रसि लै चले॥
रन जोति कै, सब साथ लै करि, मातु के कुस पाँ परे।
सिर सूँघि, कंठ लगाइ आनन चूमि, गोद दोऊ धरे॥

चीन्हि देवर के त्रिभूखन, देखि कै हनुमंत।
पुत्र हौं विधवा करी, तुम कर्म कीन दुरंत॥

बाप को रन मारियो, अरु पितृ-भ्रातृ सँघारि।
आनियो हनुमंत बाँधि न, आनियो मोहि गारि ॥१०७॥

गाना सब काकी करीं विधवा एकहिं बार।
मो सी और न पापिनी, जाये बंस-कुठार ॥१०८॥

पाप कहाँ हति बापहिं जैहौ,
लोक चतुर्दस ठौर न पैहौ।
राजकुमार कहैं नहिं कोऊ,
जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥१०९॥

कुश

मो कहँ दोस कहा, सुनु माता,
बाँधि लियो जो सुन्यो उन भ्राता।
हौं तुमहीं तेहि वार पठायो,
राम पिता कब मोहिं सुनायो ॥११०॥

मोहि विलोकि-विलोकि कै, रथ पर पौढ़े राम।
जीवत छाँड्यो जुद्ध में, माता, करि विस्राम ॥१११॥

आइ गये तबहीं मुनिनायक,
श्री रघुनंदन के गुनगायक।
बात विचारि कही सिगरी कुस,
दुक्ख कियो मन में कलि-अंकुस ॥११२॥

मुनि

कीजै न विडंबन संतत सीते,
भावी न मिटै जु कहूँ सुभ-गीते।
तू तो पतिदेवन की गुरु, बेटी,
तेरी जग मीचु कहावत चेटी ॥११३॥

सिगरे रन - मंडल माँझ गये।
अवलोकत ही अति भीत भये।
दुहुँ बालन को अति अद्भुत विक्रम।
अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥११४॥

स्रोनित सलिल नर-बानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत, बिष बिभीखन डारे हैं।
चमर-पताका बड़ी बड़वा - अनल सम,
रोगरिपु जामवन्त, केसव बिचारे हैं।
बाजि सुरबाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु-अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित सेस रामचन्द्र केसव से,
जीति कै समर, - सिन्धु साँचेहूं सँवारे हैं ॥११५

सीता—

मनसा-बाचा-कर्मना जो मेरे मन राम।
तो सब सेना जी उठै, होहि घरी न बिराम ॥११६॥

जीय उठी सब सेन सभागी।
केसव सोवत तें जनु जागी ॥
त्यों सुत सीतहिं लै सुखकारी।
राघव के मुनि पाँयन पारी ॥११७॥

सुभ सुंदर सोदर पुत्र मिले जहँ।
बरसा बरसैं सुर फूलन की तहँ ॥
बहुधा दिवि दुंदुभि के गन बाजत।
दिगपाल गयंदन के गन लाजत ॥११८॥

अंगद—

रामदेव, तुम गर्व-प्रहारी।
नित्य तुच्छ अति बुद्धि हमारी ॥

जुद्ध देउ, भ्रम तें कहि आयो।
दास जानि प्रभु मारग लायो ॥११६॥

सुंदरी सुत लै सहोदर वाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि वालमीकहि दीह दुक्ख नसाइ ॥
राम धाम चले भले जस लोक-लोक बढ़ाइ।
भाँति भाँति सुदेस केसव दुन्दुभीन बजाइ ॥

भरत लक्ष्मन सत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चौंर ढारत हैं दुऊँ दिसि पुत्र उत्तम-गात ॥
छत्र है कर इन्द्र के सुभ सोभिजै बहु भेव।
मत्तदंति चढ़े पढ़ैं जय सब्द देव नृदेव ॥१२१॥

जग्य-थली रघुनन्दन आये।
धामनि-धामनि होत बधाये ॥
श्रीमिथिलेस-सुता बड़ भागी।
स्यों सुत सासुन के पग लागी ॥१२२॥

चारिपुत्र द्वै पुत्रसुत कौसल्या तब देखि।
पायो परमानंद मन दिगपालन सम लेखि ॥
जग्य पूरन कै रमापति दान देत असेस।
हीर नीरज छीर मानिक बरसि वर्षा वेस ॥
अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहुँ भाँति।
भवन भूसन भूमि भाजन भूरि बासर-राति ॥१२३॥

एक अयुत-गज, बाजि द्वै, तीनि सुरभि सुभ वर्न।
एक-एक विप्रहिं दई केसव सहित सुवर्न ॥

देव अदेव नृदेव अरु जितने जीव त्रिलोक ।
मन भायो पायो सबन, कीन्हे सबन असोक ॥१२५॥

अपने अरु सोदरन के, पुत्र बिलोकि समान ।
न्यारे-न्यारे देस दै, नृपति करे भगवान ॥१२६॥

कुस-लव अपने भरत, के नन्दन पुष्कर-तच्छ ।
लच्छमन के अंगद भये, चित्रकेतु रनदच्छ ॥१२७॥

भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाये ।
सदा साधु सूरे बड़े भाग पाये ॥
सदा मित्र-पोसी हनै सत्रु-छाती ।
सुबाहै बड़ो, दूसरो सत्रुघाती ॥१२८॥

कुस को दई कुसावती नगरी कोसल देस ।
लव को दई अवन्तिका उत्तर उत्तम वेस ॥१२९॥

पश्चिम पुष्कर को दई, पुष्करवति है नाम ।
तच्छशिला तच्छहिं दई, लई जीति संग्राम ॥१३०॥

अंगद कहँ अंगद नगर दीन्हों पूरब ओर ।
चंद्रकेतु चंद्रावती लीन्हीं उत्तर जोर ॥१३१॥

मथुरा दई सुबाहु कहँ, पूरन-पावन गाथ ।
सत्रुघात कहँ नृप करयो देसहि को रघुनाथ ॥१३२॥

यहि भाँति सुरच्छित भूमि भई ।
सब पुत्र-भतीजन बाँटि दई ॥

सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये ।
बहु भाँतिन के उपदेस दिये ॥१३३॥

बोलिये न झूठ, ईठि मूढ़ पै न कीजई ।
दीजिये जु वस्तु हाथ भूलिहू न लीजई ॥
नेहु तोरिये न देहु, दुक्ख मंत्र-मित्र को ।
जत्र-तत्र जाहु पै पत्याहु जै अमित्र को ॥१३४॥

जुवा न खेलिये कहूँ, जुवान वेद रक्षिये ।
अमित्र-भूमि माहिं जै अभक्ष भक्ष भक्षिये ॥
करौ न मंत्र मूढ़ सों, न गूढ़ मंत्र खोलिये ।
सुपुत्र होहु जै हठी, मठीन सों न बोलिये ॥१३५॥

वृथा न पीड़िये प्रजाहि, पुत्र मानि पारिये ।
असाधु-साधु बूझि कै जथापराध मारिये ।
कुदेव देव नारि को न बाल-वित्त लीजिये ।
विरोध विप्र वंस सों सु स्वप्नहू न कीजिये ॥१३६॥

पर द्रव्य को तो विस-प्राय लेखो ।
परस्त्रीन को ज्यों गुरु-स्त्रीन देखो ।
तजौ काम क्रोधै महा मोह लोभै ।
तजौ गर्व को सर्वदा चित्त छोभै ॥१३७॥

जसै संग्रहौ निग्रहौ जुद्ध जोधा ।
करौ साधु संसर्ग जो बुद्धि - बोधा ॥
हितू होय सो देइ जो धर्म - शिक्षा ।
अधर्मीन को देहु जै वाक भिक्षा ॥१३८॥

कृतघ्नी कुवादी परस्त्री-विहारी ।
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी ॥
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै ।
द्विजातीन को आपु ही दान दीजै ॥१३६॥

तेरह-मंडल-मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै ।
कैसहु ता कहँ सत्रु न मित्र सु, केसवदास, उदास न बाधै ॥
सत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सु तासु परे जो उदास कै जोवै ।
विग्रह,संधिनि,दाननि सिन्धुलौं लै चहुँओरनि तो सुख सोवै॥१४०॥

राजश्री वस कैसेहू होहु न उर-अवदात ।
जैसे-तैसे आपुवस ता कहँ कीजै तात ॥१४१॥

—:०:—

५—प्रकीर्णक पद्य

राजा दशरथ

विधि के समान हैं विमानीकृत-राजहंस
विविध - विबुध - जुत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति, सातौं दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिना को बल है।
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति,
छनदा - न - प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दसरथ
भगीरथ - पथ-गामी गंगा को सो जल है ॥१॥

विश्वामित्र आश्रम

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच-चल नारिकेर बार ॥२॥
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी-सुक-कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं ॥३॥
सुभ राजहंस- कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केसौदास विचित्र बन ॥४॥

सूर्योदय

चढ़्यौ गगन-तरु धाइ दिनकर-बानर अरुन-मुख
कीन्हो झुकि झहराइ सकल तारका-कुसुम बिनु ॥५॥
जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिनु संपति - सोभा - साज ॥६॥

जनक पुरी

ते न नगरि ति न नागरी प्रति-पद हंसक हीन।
जलज-हार सोभित न जहँ, प्रगट पयोधर पीन ॥७॥

राजा जनक

केसव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेलि बई है।
दान-कृपान-बिधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है॥
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राज-सिरी परिपूरनता सुभ जोग मई है ॥८॥
एक सुखी यहि लोक बिलोकिय है वहि लोक निरै-पगुधारी।
एक इहां दुख देखत केसव होत उहां सुरलोक बिहारी॥
एक इहां रु उहां अति दीन सु, देत दुहूं दिसिके जन गारी।
एकहि भाँति सदा सब लोकनि है प्रभुता, मिथिलेस तिहारी ॥९॥

धनुभंग

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार-मद,
चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखंड को।
चालि अचला अचल, घालि दिगपाल-बल,
पालि रिसि-राज के बचन परचंड को।

सोधु दै ईस को, बोधु जगदीस को,
क्रोध उपजाय भृगुनंद बरिबंड को।
बाधि बर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग-
धनुभंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को॥१०॥

सीता–राम

बैठे जराइ-जरे पलिका पर राम–सिया सब को मन मोहैं।
जोति-समूह रह्यो मढ़िकै, सुर भूलि रहे, बपुरे नर को हैं॥११॥
केसव तीनिहुँ लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
सोभन सूरज-मंडल माँझ मनो कमला-कमलापति सोहैं॥१२॥

गंगाजल की पाग सिर सोहत श्रीरघुनाथ।
सिव-सिर गंगाजल किधौं चंद्र चद्रिका साथ॥१३॥

श्रवन मकर–कुंडल लसत मुख–सुखमा एकत्र।
ससि–समीप सोहत मनो श्रवन मकर नक्षत्र॥१४॥

सीता

को है दमयंती इंदुमती रति, रातिदिन
होहिं न छबीली छनछवि जो सिंगारियै।
केसव, लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारियै॥
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूप कै बिचारियै?।

सीता जू के रूप पर देवता कुरूप को है,
रूपही के रूपक तो वारि-वारि डारियै॥१५

रामचन्द्र

अमल-सजल घनस्याम वपु केसौदास,
चन्द्रहू ते चारु मुख, सुखमा को ग्राम है।
कोमल कमल-दल दीरघ-विलोचननि,
सोदर समान-रूप, न्यारो-न्यारो नाम है॥
वालक विलोकियत पूरन-पुरुख-गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप-धाम है।
वैर जिय मानि वामदेव को धनुख तोरो,
जानत हौं वीस-विसे, राम-भेस काम है॥१६॥

परशुराम

कुस-मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुस औ कमंडलु को लिये।
कर-मूल सर-धनु तर्कसी, भृगु-लात सी दरसै हिये।
धनु-बान, तिच्छ कुठार, केसव, मेखला-मृगचर्म स्यों।
रघुवीर को यह देखिये, रस-वीर सात्विक-धर्म स्यों॥१७॥

सर बान-सिखीन असेस समुद्रहि सोखि, सखा सुखही तरिहौं।
अरु लंकहि औटि कलंकित को पुनि पंक कनंकहि की भरिहौं॥
भल भूँजि कै राख सुखै करिकै, दुख दीरघ देवन के हरिहौं।
सितकंठ के कंठहि को कठुला दसकंठ के कंठन को करिहौं॥१८॥

बोरौं सबै रघुवंस कुठार की धार में बारनि बाजि सरत्थहि।
बान की बायु उड़ाय कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहि॥

रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भार में भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं ॥१६॥

तब एक विंसति बेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड सोनित सों भरे पितु-तर्पनादि क्रिया सची॥
उबरे जु छत्रिय छुद्र भूतल सोधि-सोधि सँहारिहौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ, धर्म निर्दय पारिहौं ॥२०॥

विषयी की ज्यों पुष्पसर गति को हनत अनंग।
रामदेव त्योंही करी परसुराम गति भंग ॥२१॥

अवध में प्रवेश

ताड़का तारि सुबाहु सँहारि कै गौतम-नारि के पातक टारे।
चाप हत्यो हर को हठि केसव देव-अदेव हुते सब हारे।
सीतहि ब्याहि अभीत चले गिरि-गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनन्दन औधपुरी पगुधारे ॥२२॥

वन में राम-सीता और लक्ष्मण

बिपिन मारग राम विराजहीं,
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं।
विविध श्रीफल सिद्ध मनो फलो,
सकल साधन-सिद्धिहिं लै चलो ॥२३॥

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप-रूरे लसैं देहधारी मनो।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंस के हैं मनो, भोग भारे भनो।
देवराजा लिये देवरानी मनो पुत्र संजुक्त भूलोक में सोहियै।
पक्ष दू संधि, संध्या सँधी हैं मनो, लच्छिये स्वच्छ प्रत्यच्छ ही मोहिये॥२४

सीता

वा सों मृग-अंक कहैं, तो सों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानियै ।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजै,
वह कलानिधि तुहूँ कला कलित बखानियै ॥
रत्नाकर के हैं दोऊ, केसव, प्रकासकर,
अंबर-विलास कुवलय-हितु मानियै ।
वा के अति सीत कर, तुहूँ सीता सीतकर,
चंद्रमा सी, चंद्रमुखी, सब जग जानियै ॥२५॥

कलित कलंक केतु, केतु-अरि, सेत गात,
भोग-जोग को अजोग, रोग ही को थल सो ।
पून्यो ई को पूरन पै, आन दिन ऊनो-ऊनो,
छन-छन छीन होत छीलर के जल सो ॥
चंद सो जो बरनत रामचंद की दोहाई,
सोई मति-मंद कवि केसव मुसल सो ।
सुंदर सुबास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि, केवल कमल सो ॥२६॥

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एकै कहैं चंद सम आनंद को कंद री ॥
होइ जो कमल तो रजनि में न सकुचै री,
चंद जो तो बासर न होत दुति मंद री ॥
बासर ही में कमल, रजनि ही में चंद,
मुख बासर-हू-रजनि बिराजै जगबंद री ।

देखे मुख भावै, अनदेखेई कमल-चंद,
ता तें मुख मुखै, सखी, कमलौ न चंद री ॥२७॥

भरत-वन-गमन

सब सारस-हंस भये खग खेचर, वारिद ज्यों बहु वारन गाजे।
वन के नर-बानर-किन्नर बालक,लै मृग ज्यों मृगनायक भाजे॥
तजि सिद्ध समाधिन, केसव, दीरघ दौरि दरीनमें आसन साजे।
सब भूतल भूधर हाले अचानक,आइ भरत्थ के दुंदुभि बाजे॥२८॥

पंचवटी वन-वर्णन

सब जाति फटी दुख-की-दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी-हूँ-घटी, जग-जीव जतीन की छूटी तटी।
अघ-ओघ की बेरी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति-नटी, गुन धूरजटी वन पंचवटी॥२९॥

दंडकवन-वर्णन

सोभत दंडक की रुचि बनी।
भाँतिन-भाँतिन सुंदर घनी॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै।
श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै॥३०॥

बेर भयानक सी अति लगै।
अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥

नैनन को बहु रूपन ग्रसै।
श्री हरि की जनु मूरति लसै॥३१॥

राजति है यह ज्यौं कुल-कन्या।
धाइ विराजति है सँग धन्या।
केलिथली जनु श्रीगिरिजा की।
सोभ धरे सित कंठ प्रभा की॥३२॥

गोदावरी

विषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति।
केसव जीवनहार को दुख असेस हरि लेति॥३३॥

सीताहरण

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतू की सिखा,
कै धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं,
संबर छँड़ाइ लई कामिनी कै काम की॥

पाखंडी की सिद्धि, कै मंठस-सम एकादसी,
लीनी कै स्वपच-राज साखा सुद्ध साम की।
केसव, अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी
लंकनाथ-हाथ परी छाया-जाया राम की॥३४॥

सीता का वस्त्राभूषण फेंकना

सीता के पद-पद्म को नूपुर-पट जनि जानु।
मनौ करयौ सुग्रीव-घर राजसिरी प्रस्थानु॥३५॥

राम-विरह

कहि केसव जाचक के अरि चंपक, सोक असोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब, ते तीच्छन जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आये, रहे मन मौन कहा धरिकै?
सिय कौ कछु सोधु कहौ करुनामय, हे करुना करुना करिकै ॥३६॥

मिलि चक्किन चंदन-बात बहै अति मोहन न्यायन ही मति को।
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चंद निसाचर-पद्धति को॥
प्रतिकूल सुकादिक होंहि सबै, जिय जानै नहीं इनकी गति को।
दुख देत, तड़ाग तुम्हैं न बनै, कमलाकर ह्वै कमलापति को ॥३७॥

दिन में चन्द्र

चंद मंद-दुति बासर देखो,
भूमि हीन भुवपाल विसेखो।
मित्र, देखिये सोभन है यौं,
राजसाज बिनु सीतहि हौं ज्यौं ॥३८॥

पतिनी पति-बिन दीन अति, पति पतिनी-बिनु मंद।
चंद बिना ज्यों जामिनी, ज्यौं बिनु जामिनि चंद ॥३९॥

वर्षा-वर्णन

देखि राम बरसा रितु आई,
रोम-रोम बहुधा दुख-दाई।
आस-पास तम की छवि छाई॥
राति-द्यौस कछु जानि न जाई॥४०॥

मंद-मंद धुनि सों घन गाजैं।
तूर तार जनु आवझ बाजैं॥
ठौर-ठौर चपला चमकै यों॥
इन्द्र - लोक - तिय नाचति हैं ज्यों॥४१॥

सोहैं घन स्याम घोर घने।
मोहैं तिनमें बक - पाँति मनैं॥
संखावलि पी बहुधा जल स्यों।
मानो तिनको उगिलै बल स्यों॥४२॥

सोभा अति सक्र - सरासन में।
नाना दुति दीसति है घन में॥
रत्नावलि सी दिविद्वार भनो।
वर्षागम बाँधिय देव मनो॥४३॥

घन घोर घने दसहूँ दिसि छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना छिति के तन ताये।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥४४॥

अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो।
निरघात सबै पविपात बखानो॥
धनु है, यह गौरमदाइन नाहीं।
सरजाल बहै, जलधार वृथाहीं॥४५॥

भट, चातक दादुर मोर न बोलैं।
चपला चमकै न, फिरै खँग खोलैं॥

द्युतिवंतन को विपदा बहु कीन्ही ।
धरनी कहँ चंद्रवधू धरि दीन्हीं ॥४६॥

तरुनि यह अत्रि रिसीश्वर की सी ।
उर में हम चंद्रप्रभा सम दीसी ॥
बरसा न सुनौ, किलकै कल काली ।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली ॥४७॥

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है ।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की,
नैन अमल कमलदल दलित निकाई है ॥
केसौदास प्रवल करेनुका गमन हर,
मुकुत सु हंसक-सबद सुखदाई है ।
अंबर-वलित मति मोहै नीलकंठजू की,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है ॥४८॥

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन, केसव, देखि जिये ।
गति आनन लोचन पांइन के अनुरूपक से मन मानि लिये ॥
यहि काल कराल ते सोधि सबै हठि कै बरखा-मिस दूरि किये ।
अब धौं बिनु प्रान प्रिया रहिहैं, कहि, कौन हितू अवलंबि हिये ॥४९॥

शरद्-वर्णन

बीते बरखा-काल यों आयी सरद सुजाति ।
गये अँधेरी होत ज्यों चारु चाँदनी राति ॥५०॥

मंद-मंद धुनि सों घन गाजैं।
तूर तार जनु आवझ बाजैं॥
ठौर-ठौर चपला चमकै यों॥
इन्द्र - लोक - तिय नाचति हैं ज्यों॥४१॥

सोहैं घन स्याम घोर घने।
मोहैं तिनमें वक - पाँति मनैं॥
संखावलि पी बहुधा जल स्यों।
मानो तिनको उगिलै वल स्यों॥४२॥

सोभा अति सक्र - सरासन में।
नाना द्युति दीसति है घन में॥
रत्नावलि सी दिविद्वार भनो।
वर्षागम बाँधिय देव मनो॥४३॥

घन घोर घने दसहूँ दिसि छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना छिति के तन ताये।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥४४॥

अति गाजत बाजत दुंदभि मानो।
निरघात सबै पविपात बखानो॥
धनु है, यह गौरमदाइन नाहीं।
सरजाल बहै, जलधार वृथाहीं॥४५॥

भट, चातक दादुर मोर न बोलैं।
चपला चमकै न, फिरैं खँग खोलैं॥

बीस-बिसे बलवंत हुते, जु हुती दृग केसव रूप-रई जू ।
तोरि सरासन संकर को, पिय, सीय स्वयंबर क्यों न लई जू ॥५४॥

बालि बली न बच्यौ पर खोरहि, क्यों बचिहौ तुम आपनि खोरहि ।
जा लगि छीर-समुद्र मथ्यौ, कहि, कैसे न बाँधिहैं बारिधि थोरहि ।
श्रीरघुनाथ गनौं असमर्थ न, देखि बिना रथ हाथिन घोरहि ।
तोर्यो सरासन संकर को जेहि, सोव कहा तुव लंक न तोरहि ॥५५॥

बिभीषण-शरणागति

दीन-दयाल कहावत, केसव, हौं अति दीन दसा गह्यो गाढ़ो ।
रावन के अघ-ओघ-समुद्र में बूड़त हौं, बर की गहि काढ़ो ।
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरति त्योंहीं बिभीखन को जस बाढो ।
आरत-बंधु पुकार सुनौ किन, आरत हौं तो पुकारत ठाढो ॥५६॥

केसव आपु सदा सह्यो दुःख, पै दासन देखि सके न दुखारे ।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्योंही तहाँ तेहि भाँति सँभारे ॥
मेरियै बार अबार कहा, कहूँ नाहि तु काहू के दोप बिचारे ।
बूड़त हौं महा मोह-समुद्र में, राखत काहे न राखनहारे ॥५७॥

सेतु-बंधन

उछलै जल उच्च अकास चढ़ै ।
जल जोर दिसा-बिदिसान मढ़ै ॥
जनु सिंधु अकास नदी अरिकै ।
बहु भाँति मनावत पाँ परिकै ॥५८॥

लछमन, दासी बृद्ध सी आयी सरद सुजाति।
मनहुँ जगावन को हमहिं बीते बरखा-राति ॥५१॥

राम का लंका-प्रयाण

कहै केसौदास, तुम सुनो राजा रामचंद्र,
रावरी जबहि सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आस-पास,
दिसि-दिसि बरखा ज्यों बलनि बलति हैं॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज
गजराज मृग मृगराज राजिनि दलति है।
जहाँ-जहाँ ऊपर पताल-पथ आइ जात,
पुरइन को सो पात पुहुमी हलति है ॥५२॥

भार को उतारिबे को अवतरे रामचंद्र,
किधौं, केसौदास, भूमि भारत प्रबल दल।
टूटत हैं तरुवर, गिरैं गन गिरिवर,
सूखे सब सरवर-सरित सकल जल॥
उचकि चलत कपि, दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल-थल।
लचकि-लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गई भोगवती अतल-वितल तल ॥५३॥

मन्दोदरी-रावण-सम्वाद

राम की वाम जो आनी चोराइ सो लंक में मीचु की बेलि वई जू।
क्यों रन जीतहुगे तिनसों जिनकी धनुरेख न लांकि गई जू॥

बीस-बिसे बलवंत हुते, जु हुती दृग केसव रूप-रई जू।
तोरि सरासन संकर को, पिय, सीय स्वयंवर क्यों न लई जू ॥५४॥

बालि बली न बच्यौ पर खोरहि,क्यों बचिहौ तुम आपनि खोरहि।
जा लगि छीर-समुद्र मथ्यौ, कहि, कैसे न बाँधिहैं बारिधि थोरहि।
श्रीरघुनाथ गनौं असमर्थ न, देखि बिना रथ हाथिन घोरहि।
तोरयो सरासन संकर को जेहि, सोच कहा तुव लंक न तोरहि ॥५५॥

विभीषण-शरणागति

दीन-दयाल कहावत, केसव, हौं अति दीन दसा गह्यो गाढ़ो।
रावन के अघ-ओघ-समुद्र में बूड़त हौं, बर की गहि काढ़ो।
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरति त्योंहीं विभीखन को जस बाढो।
आरत-बंधु पुकार सुनौ किन, आरत हौं तो पुकारत ठाढो ॥५६॥

केसव आपु सदा सह्यो दुःख, पै दासन देखि सकै न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्योंही तहाँ तेहि भाँति सँभारे॥
मेरियै बार अबार कहा, कहूँ नाहि तु काहू के दोष बिचारे।
बूड़त हौं महा मोह-समुद्र में, राखत काहे न राखनहारे ॥५७॥

सेतु-बंधन

उछलै जल उच्च अकास चढै।
जल जोर दिसा-विदिसान मढ़ै॥
जनु सिंधु अकास नदी अरिकै।
बहु भाँति मनावत पाँ परिकै ॥५८॥

बहु व्योम विमान ते भीजि गये ।
जल-जोर भये अँगराग रये ॥
सुर सागर मानहु जुद्ध जये ।
सिगरे पट-भूखन लूटि लये ॥५६॥

अति उच्छलि छिंछि त्रिकूट छयो ।
पुर रावन के जल जोर-भयो ॥
तब लंक हनूमत लाइ दई ।
नल मानहु आइ बुझाई लई ॥ ६० ॥

लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे ।
सरितान के फेर प्रवाह बहे ॥
पति देवनदी रति देखि भली ।
पितु के घर को जनु रूसि चली ॥६१॥"

राम-सेना

कुंतल ललित नील भृकुटी धनुस नैन,
कुमुद कटाच्छ बान सबल सदाई है ।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूखनन;
मध्य देस केसरी सुगज गति पाई है ।
विग्रहानुकूल सब लच्छ-लच्छ रिच्छबल,
रिच्छराज-मुखी मुख केसौदास गाई है ।
रामचंद्र जू की चमू राजश्री विभीखन की,
रावन की मीचु दरकूच चलि आई है ॥६२॥

राजनीति

कह्यो सुक्राचार्य सु हौं कहौं जू।
सदा तुम्हारो हित संग्रहौं जू॥
नृपाल भू में विधि चारि जानौ।
सुनौ महाराज, सबै बखानौं॥६३॥

यहै लोक एकै सदा साधि जानै।
चलो बेनु ज्यों आप हीं ईस मानै॥
करै साधना एक परलोक ही को।
हरिश्चंद्र जैसे गये दै मही को॥६४॥

दुहूँ लोक को एक साधैं सयाने।
विदेहीन ज्यों वेद-बानी बखाने॥
नसैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे।
त्रिसंकै हँसै ज्यों भलेऊ अनैसे॥६५॥

मंत्री

चार भाँति मन्त्री कहे, चारि भाँति के मन्त्र।
मोहि सुनायो सुक्र जू, सोधि-सोधि सब तन्त्र॥६६॥

एक राज के काज हतैं निज कारज काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मन्त्री सुख साजे॥
एक राज के काज आपने काज बिगारत।
जैसे लोचन-हानि सही कवि बलिहि निवारत॥
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि-दूत ज्यों।
इक अपनो अरु प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥६७॥

मंत्र जू चारि प्रकार के, मंत्रिन के जे प्रमान।
बिस से, दाड़िम-बीज से, गुड़ से, नींब समान ॥६८॥

लक्ष्मण-मूर्च्छा

देखि बिभीखन को रन रावन सक्ति गही कर रोख-मयी है।
छूटत ही हनुमंत सो बीचहिं पूंछ लपेटि कै डारि दयी है।
दूसरि ब्रह्म की सक्ति अमोघ चलावत ही हाय हाय भयी है।
राख्यो भले सरनागत लक्ष्मन फूलि कै फूलि सों ओढ़ि लयी है॥६९॥

कुंभकर्ण के समझाने पर रावण की फटकार

कुंभकरण, करि जुद्ध कै, सोइ रहो घर जाइ।
वेगि बिभीखन ज्यों मिलौ, गहौ रुत्रु के पाँइ ॥७०॥

मेघनाद-मरण पर रावण-विलाप

आजु आदित्य जल, पवन पावक प्रबल,
चंद आनंद-मय, त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करौ, नृत्य गंधर्व कुल,
जच्छ विधि लच्छ उर जच्छकर्दम धरौ॥
ब्रह्म रुद्रादि दै देव तिहुँ लोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्रहिं करौ।
आजु सिय राम दै, लंक कुलदूखनहिं,
जग्य को जाय सर्वग्य विप्रहु वरौ ॥७१॥

मकराक्ष का युद्ध

कोदंड हाथ, रघुनाथ, सँभारि लीने।
भागे सबै समर जूथप, दृष्टि दीने॥
बेटा बलिष्ट खर को मकराक्ष आयो।
संहारकाल जनु काल कराल धायो॥७२॥

सुग्रीव अंगद बली हनुमंत रोक्यो।
रोक्यो रह्यो न रघुबीर जहीं बिलोक्यो॥
मार्यो बिभीखन गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लच्छन कंठ मेली॥७३॥

गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंगभारे।
काटे कटैं न, बहु भाँतिन काटि हारे॥
ब्रह्मा दियो बरहि, अस्त्र न सस्त्र लागैं।
लै ही चल्यो समर सिंहहिं जोर जागैं॥७४॥

मायांधकार दिवि भूतल लोपि लीन्हों।
ग्रस्तास्त मानहुं ससी कहँ राहु कीन्हों॥
हाहादि सब्द सब लोग जहीं पुकारे।
बाढ़े असेस अँग राच्छस के बिदारे॥७५॥

श्रीरामचंद्र पग लागत चित्त हर्से।
देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प बर्से॥
मार्यो बलिष्ठ मकराक्ष सुबीर भारी।
जाके हते रवत रावन गर्ब भारी॥७६॥

रावण का संदेश

सूपनखा जु बिरूप करी तुम ताते कियो हमहू दुख भारो।
बारिधि बंधन कीन्हों हुतो तुम, मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो॥
होइ जु होनी सु ह्वै ई रहै, न मिटै, जिय कोटि बिचार बिचारो।
दै भृगुनंदन को परसा, रघुनंदन, सीतहि लै पगुधारो॥७७॥

राम का उत्तर

भूमि दई भुवदेवन को भृगु-नंदन भूपन सों बर लैकै।
वामन स्वर्ग दियो मघवै सो, बली बलि बाँधि पताल पठै कै॥
संधि की बातन को प्रति उत्तर, आपुन ही कहिये हित कै-कै।
दीन्ही है लंक बिभीखन को, अब देहिं कहा तुमको यह दै कै॥७८॥

मंदोदरी की फटकार

तब सब कहि हारे, राम को दूत आयो।
अब समुझि परी जो पुत्र भैय जुझायो॥
दसमुख सुख जीजै, राम सों हौं लरौं यों।
हरि-हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों॥७९॥

रावण-बध

भुवभारहि संजुत राकस को गन जाय रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय सब्द समेतहि केसव राज बिभीखन के सिर जाग्यो॥
मयदानव-नंदिनिके सुख सों मिलिकै सियके हियको दुख भाग्यो।
सुर-दुंदुभि-सीसगजा,सर रामको रावणके सिर साथहि लाग्यो॥८०॥

मंदोदरी-विलाप

जीति लिये दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी ।
वासरहू निसिदेवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी ॥
तीनहु लोकन की तरुनीन की वारी बँधी हुती दंडहि दू की ।
सेवित स्वान सियार सो रावन सोवत सेज परे अब भूकी ॥८१॥

भरद्वाज–आश्रम

केसौदास मृगज-बछेरू चूसैं बाघनीन्ह,
चाटत सुरुभि बाघ-बालक-बदन है ।
सिंघन की सटा ऐंचै कलभ करन्ह करि,
सिंघन्ह को आसन गयंद को रदन है ॥
फनी के फनन्ह पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है ।
वानर फिरत डोरे–डोरे अंध तापसन्ह,
सिव को समाज कैधौं रिखि को सदन है ॥८२॥

राम राज्य

अनंता सबै सर्वदा सस्य-जुक्ता ।
समुद्रावधिः सप्त–ईती–विमुक्ता ।
सदा वृत्त फूले-फले तत्र सोहैं ।
जिन्हें अल्पधी कल्पसाखी विमोहैं ॥८३॥

सबै निम्नगा छीर के पूर पूरीं ।
भईं कामगो सी सबै धेनु रूरीं ।

सवै वाजि स्ववाजि तें तेज पूरे।
सवै दंति स्वदंति तें दर्प रूरे ॥८४॥

चिरंजीवि संयोगि योगी अरोगी।
सदा एकपत्नी व्रती भोग-भोगी।
सवै सील-सौंदर्य सौगंधधारी।
सवै ब्रह्मज्ञानी गुनी धर्मचारी ॥८५॥

सवै न्हान दानादि कर्माधिकारी।
सवै चित्त-चातुर्य-चिंतापहारी।
सवै पुत्र पौत्रादि के सुक्ख साजैं।
सवै भक्त माता-पिता के बिराजैं ॥८६॥

सवै सुंदरी सुंदरी साधु सोहैं।
सची सी सती सो जिन्हैं देखि मोहैं।
सवै प्रेम की पुन्य की सद्मिनी सी।
सवै पुत्रिनी चित्रनी पद्मिनी सी ॥८७॥

भ्रमैं संभ्रमी जत्र सोकै ससोकी।
अधर्मैं अधर्मी अलोकै अलोकी।
दुखैं है दुखी ताप तापाधिकारी।
दरिद्रै दरिद्री विकारै विकारी ॥८८॥

होमधूम मलिनाई जहाँ
अति चंचल चलदल हैं तहाँ।
बाल नास है चूड़ाकर्म।
तीच्छनता आयुध को धर्म ॥८९॥

लेत जनेऊ भिच्छा-दानु ।
कुटिल चाल सरितानि बखानु ।
व्याकरणै द्विज-वृत्तिन हरैं ।
कोकिल-कुल पुत्रन परिहरैं ॥६०॥

भावै जहाँ व्यभिचारी, वैदै रसै परनारी,
द्विजगन दंडधारी, चोरी परपीर की ।
मानिनीन ही के मन मानियत मानभंग,
सिंधुहि उलंघि जाति कीरति सरीर की ।
मूलै तो अधोगतिन पावत हैं केसौदास,
मीचु ही सों है विजोग, इच्छा गंगनीर की ।
बंध्या वासनानि जानु, विधवा सुवाटिका ही,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥६१॥

कविकुल ही के श्रीफलन उर अभिलाख समाज ।
तिथि ही को छय होत है रामचंद्र के राज ॥६२॥

लूटिवे के नाते पाप-पट्टनै तो लूटियत,
तोरिवे को मोहतरु तोरि डारियतु है ।
घालिवे के नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिवे के नाते अघ-ओघ जारियतु है ।
बाँधिवे के नाते ताल बाँधियत केसौदास,
मारिवे के नाते तो दरिद्र मारियतु है ।

राजा रामचंद्रजू के नाम जग जीतियतु,
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥९३॥

सबके कलपद्रुम के बन हैं सबके बर बारन गाजत हैं ।
सबके घर सोभित देवसभा सब के जय-दुंदुभि बाजत हैं ॥
निधि-सिद्ध विशेस असेसन सों सब लोग सबै सुख साजत हैं ।
कहि केसव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥९४॥

———

कविप्रिया*

गणेश-वंदना

गजमुख सनमुख होत ही विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत प्रयाग-मग पाप-पहार बिलात ॥१॥

वाणी-वंदना

वानीजू के बरन जुग सुबरन-कन-परमान।
सुकवि-सुमुख-कुरुखेत परि होत सुमेरु समान ॥२॥

शिव-वंदना

सांप को कंकन, माल कपाल, जटान को जूट रही जटि आँतैं।
खाल पुरानी, पुरानोइ बैल सु, और-की-और कहैं बिख-मातैं॥
पारवती-पति संपति देखि कहै यह केसव संभ्रम ता तैं।
आपुन माँगत भीख, भिखारिन देत दई ! मुँहमाँगी कहाँ तैं ॥३॥

---

* रसिकप्रिया, रामचंद्रिका और विज्ञानगीता के अनेक छंद कविप्रिया में भी उद्धृत हैं।

श्रीराम-वंदना

खात न अघात, सब जगत खवावत है,
द्रौपदी के सागपात खात ही अघाने हौ।
केसौदास, नृपति-सुता के सतभाय भये,
चोर तें चतुरभुज, चहूँ चक जाने हौ।
माँगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सूत सुनो,
काठ माँहि कौन पाठ वेदन बखाने हौ।
और है अनाथन को नाथ कोऊ, रघुनाथ,
तुम तो अनाथन के हाथ ही बिकाने हौ ॥४॥

नायिका

सोने की अेक लता तुलसी वन क्यों बरनौं सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
केसवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल के द्वै ॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
ता पर एक सुआ सुभ, ता पर खेलत बालक खंजन के द्वै ॥५॥

नायिका-रूप

पूरन कपूर पान खाये कैसो मुख-बास,
अरुन अधर रुचि, सुधा सों सुधारे हैं।
चित्रित कपोल लोल लोचन मुकर ऐन,
अमल झलक झलकनि मोहि मारे हैं ॥
भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे हौं होड़
आंजी अैसी आँख केसोराइ हेरि हारे हैं।

काहे को सिंगारि कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अँग सहज सिंगार ही सिंगारे हैं ॥६॥

मान

सिखै हारी सखी, डरपाइ हारी कादंबिनी,
दामिनि दिखाइ हारी निसि अधरात की।
झुकिझुकि हारी रति,मारिमारि हार्‍यो मार
हारी झकोरति त्रिबिधि गति बात की॥
दई निरदई दई वाहि काहे ऐसी मति,
जारत जु रैन दिन दाह ऐसे मान की।
कैसे हू न मानै हौं मनाइ हारि केसौराइ,
बोलि हारी कोकिला,बुलाइ हारी चातकी॥७॥

पूर्वानुराग

भूलि गयो सब सों रस-रोस, मिटे भव के भ्रम, रैन-बिभातो।
को अपनो पर को पहिचान न, जानति नांहिने सीतल-तातो॥
नेकु ही में बृखभानु-लली को भयो सो, न जा की कही परै बातो।
एक ही बेर में जानिये, केसव, काहे तें छूटि गये सुख सातो॥८॥

वियोग

कहूँ बात सुने सुपने हू बिजोग की होन कहै दुइ टूक हियो।
मिलि खेलिये जा सहुँ बालक तें कहि तासों अबोल क्यों जात कियो॥
कहियै कहा केसव नैननि को बिनु काजहि पावक-पुंज पियो।
सखि तूं बरजै अरु लोक हँसै कहि काहे को पेम को नेम लियो॥९॥

प्रिय-प्रवास

केसव प्रात बड़े ही बिदा कहुँ आये प्रिया पहँ नेह-नहे री।
आउँ महावन ह्वै जौ कहौ हँसि बोलि द्वै ऐसैं बरधाइ कहे री॥
को प्रति-उत्तर देइ सखी सुनि लोल बिलोचन यों उमहे री।
सौंह कक्कै हरि हारि रहे, दिन बोसक लौं अँसुवा न रहे री ॥१०॥

जो हौं कहौं रहियै तो प्रभुता प्रकट होति,
चलन कहौं तो हित-हानि नहीं सहनो।
भावै सो करहु तो उदास भाव, प्राननाथ,
साथ लै चलहु, कैसे लोक-लाज बहनो॥
केसौराइ की सौं, तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जो पै नाहीं, राज, रहनो।
तैसियै सिखावो सीख तुम ही, सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहिं जैसो कछू कहनो ॥११॥

बारह-मासा

फूलीं लतिका ललित तरुन-तन फूले तरुवर।
फूलीं सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर॥
फूलीं कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
सुक-सारो-कुल हँसे, फूलि कोकिल कल कूजहिं॥
कहि केसव, ऐसी फूल महँ फूलहिं सूल न लाइये।
पिय आपु चलन की का चली, चित्त न चैत चलाइये ॥१२॥

केसवदास, अकास-अवनि बासित सुबास करि।
बहत पवन गति मंद गात मकरंद-बुंद धरि॥

दिसि-विदिसनि छवि लागि, भाग पूरित पराग वर।
होत गंध ही अंध बौर भौंरा विदेशि नर॥
सुनि सुखद-सुखद सिख-सोख पति रति सिखई सुख साख में।
वर-विरहिन वधत विसेख करि, काम विसिख वैसाख में॥१३॥

एक-भूत-मय होत भूत तजि पंचभूत भ्रम।
अनिल, अंबु, आकास, अवनि ह्वै जात आगि सम॥
पंथ-थकित मद-मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत।
काकोदर करि कोस उदर तर केहरि सोवत॥
प्रिय, प्रवल जीव यहि विधि अचल सकल विकल जलथल रहत।
तजि, केसवदास, उदास मति, जेठ मास जेठे कहत॥१४॥

पवन-चक्र परचंड चलत चहुँ ओर चपल-गति।
भवन भामिनी तजत, भँवति मानहु तिन की मति॥
संन्यासी यहि मास होत इक-आसन-वासी।
मनुजन की को कहै, भये पच्छियौ निवासी॥
यहि समय सेज सोवन लियो श्रीहि साथ श्रीनाथ हू।
कहि केसवदास, असाढ़ चल मैं न सुन्यो श्रुतिगाथ हू॥१५॥

केसव सरिता सकल मिलत सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तन, तरुवर सोहैं॥
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन।
मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन॥
यहि रीति रमन-रमनी सकल लागे रमन-रमावनै।
पिय, गमन करन की को कहै, गमन सुनिय नहिं सावनै॥१६॥

घोरत घन चहुँ ओर, घोस-निर्घोसनि मंडहिं।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारनि जल छंडहिं॥
झिल्लीगन झंकार, पवन झुकि-झुकि झकझोरत।
वाघ सिंह गुंजरत, पुंज कुंजर तरु तोरत॥
निसिदिन विसेस निःसेस मिटि जात, सु ओली ओड़ियै।
निजदेस पियूख विदेस विख, भादों भवन न छोड़ियै॥१७॥

प्रथम पिंड हित प्रगट पितर पावन घर आवैं।
नव दुर्गा नर पूजि स्वर्ग-अपवर्गहु पावैं॥
छत्रनि दै छितिपतिहु लेत भुव लै सँग पंडित।
केसवदास, अकास अमल, जल जलजनि मंडित॥
रमनीय रजनि रजनीस रुचि, रमारमनहू रास-रति।
कल केलि कलपतरु क्वांर महँ, कंत, न करहु विदेस मति॥१८॥

वन, उपवन, जल, थल, अकास दीसंत दीप गन।
सुख ही सुख दिनरात जुवा खेलत दंपति-जन॥
देव-चरित्र-विचित्र-चित्र चित्रित आँगन-घर।
जगत जगत जगदीस-जोति, जगमगत नारि नर॥
दिन दान न्हान गुनगान हरि जनम सुफल करि लीजियै।
कहि केसवदास, विदेस मति, कंत, न कातिक कीजियै॥१६॥

मासन में हरि-अंस कहत यासों सब कोऊ॥
स्वारथ-परमारथ हु देत भारथ-महि दोऊ॥
केसव सरिता-सरनि फूल फूले सुगंध गुर॥
कूजत कुल कलहंस, कलित कलहंसनि को सुर॥

दिन परम नरम, सीत न गरम, करम-करम यह पाय मितु ।
करि, प्राननाथ. परदेस कहँ मारगसिर मारग न चितु ॥२०॥

सीतल जल-थल, बसन-असन सीतल अनरोचक।
केसवदास, अकास - अवनि, सीतल असु-मोचक ॥
तेल, तूल, तामोर, तपन, तापन, नव नारी ।
राज-रंक सब छोरि करत इनहीं अधिकारी ॥
लघु दिवस, दीह रजनीन सुनि होत दुसह दुख रूस में ।
यह मन-क्रम-बचन बिचारि, पिय, पंथ न बूझिय पूस में ॥२१॥

वन, उपवन, केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत ।
केसव भूले भँवर भरे बहु भायन डोलत ॥
मृगमद, मलय, कपूरधूर, धूसरित दसौ दिसि ।
ताल, मृदंग, उपंग सुनत संगीत गीत निसि ॥
खेलत वसंत संतत सुघर सत-असंत अनंत गति ।
घर, नाह, न छाँड़िय माह में, जो मन माँहि सनेह मति ॥२२॥

लोक-लाज तजि राज-रंक निरसंक विराजत ।
जोइ भावत सोइ कहत, करत पुनि हास, न लाजत ॥
घर-घर जुवती जुवन जोर गहि गांठिन जोरहिं ।
बसन छीनि, मुख माँजि, आँजि लोचन, तिन तोरहिं ॥
पटवास-सुवास अकास उड़ि भुव-मंडल सब मंडियै ।
कह केसवदास, विलास-निधि फागुन फागु न छंडियै ॥२३॥

अन्योक्ति

आपु धरैं मल, औरनि केसव निर्मल-काय करै चहुँ ओरैं ।
पंथिन के परिताप हरै हठि जे तरु-तूल-तनोरुह तोरैं ।

देखहु एक सुभाव बड़ो बड़भाग तड़ागन को बित थोर।
ज्यावत जीवनहारिन को निज बंधन के जग-बंधन छोरै ।२४।।

अन्योक्ति

दत्त देख्यो नहीं, बस जाड़ो बड़ो, अरु घाम घनो, ज्वल क्यों हरिहै।
कहि केसव, बाहु बहै दिन, दाव दहै धर, धीरज क्यों धरिहै ।।
फलिहै फुलिहै नहीं तो लौं, तुही कहि. तो पहँ भूख सही परिहै।
कछु छाँह नहीं, सुख-सोभ नहीं, रहि, कीर,करीर कहा करिहै ? ।।२५।।

नरक

वाहन कुचाल, चोर चाकर, चपल चित,
मीत मतिहीन, सूम स्वामी, उर आनियै।
पर-घर भोजन, निवास-वास कु पुरन,
केसौदास, बरखा-प्रवास दुखदानियै ।।
पापिन को अंग-संग, अंगना अनंग-बस,
अपजस-जुत सुत, चित हित हानियै ।।
मूढ़ता बुढ़ाई व्याधि दारिद झुठाई आधि,
यहई नरक नर-लोकन बखानियै ।।२६।।

मुक्ति

पंडित पूत सपूत सुधी, पतनी
प्रति-प्रेम-परायन भारी।
जानैं सबै, गुन मानैं सबै,
जग दान-विधान दया उर धारी ।।

केसव, रोगन ही सों विजोग,
सँजोग-सुभोगन सौं सुखकारी।
साँच कहैं, जग माँहि लहै जस,
मुक्ति यहै चहुँ वेद विचारी ॥२७॥

नारी-प्रशंसा

माता जिमि पोखन, पिता ज्यों प्रतिपाल करै,
प्रभु जिमि सासन करति हेरि हिय सों।
भैया ज्यों सहाय करै, देति है सखा ज्यों सुख,
गुरु ज्यों सिखावै सिख, हेत जोरि जिय सों॥
दासी ज्यों टहल करै, देवी ज्यों प्रसन्न ह्वै
सुधारै परलोक, ना तो नाहिं काहू विय सों।
छाके हैं अयान-मद छिति के छनक छुद्र,
औरनि सौं नेह करैं छाँड़ि ऐसी तिय सों ॥२८॥

संसार

जीउ दियो अरु जनम दियो जग, जाहि की जोति बड़ी जग जानै।
ताही सों वैर मनो वच-काय करै, कृत केसव को उर आनै।
मूसक तें रिसि सिंघ करयो, फिरि ताही सों मूरख रोस वितानै।
ऐसो कछू यह काल है, जाको भलो करियै सो बुरो करि मानै ॥२९॥

प्रारब्ध

बालि बिंध्यो, बलिराव बँध्यो, कर सूली के सूल कपाल थली है।
काम जरयो जग, काल परयो बँदि, सेस धरयो विख हालाहली है॥

सिधु मथ्यो, कित्त कालो नथ्यो, कहि केसव, इन्द्र कुचाल चली है।
रामहू की हरी रावण बाम, चहूँ जुग एक अदृष्ट बली है ॥२०॥

विधि-विधान

कर्न कृपा द्विज-द्रोन तहाँ, जिन को कृत काहु पै जात न टारो।
भीम गदाहि धरे, धनु अर्जुन, जुद्ध जुरे जिन सों जम हारो।
केसवदास, पितामह भीसम मीचु करी बस लै दिसि चारों।
देखत ही तिन के दुरजोधन द्रौपदि सामुहे हाथ पसारो ॥२१॥

वेई हैं बान विधान-निधान अनेक चमू जिन जोर हयी जू।
वेई हैं बाहु, वई धनु धीर जु, दीह दिसा जिन जुद्ध जयी जू।
वेई हैं अर्जुन, आन नहीं, जग में जस की जिन बेलि बयी जू॥
देखत ही तिनके तब का बनि नीकेहिं नारि छिड़ाइ लई जू ॥२२॥

श्रीराम-प्रशंसा

पूत भयो दसरत्थ को, केसव, देवन के घर बाजी बधाई।
फूलि कै फूलन को बरसैं, तरु फूलि फले सबही सुखदाई ॥
छीर बहीं सरिता, सब भूतल धीर समीर सुगंध सुहाई।
सर्व तुलंग लुटावत देखि कै, दारिद देह दरार सो खाई ॥२३॥

वीरबल प्रशंसा

केसवदास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक, बनाइ सँवारयो।
धोयो धुपै नहीं छूटो छुटै, बहु तीरथ जाइ कै नीर पखारयो।
ह्वै गयो रंक तें राव तबै, जब बीरबली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाइ रह्यो मुख चारयो ॥२४॥

पावक पंछी-पसू नर-नाग नदी-नद लोक रचे दस-चारी ।
केसव, देव-अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निवारी ॥
कै वर बीर चली वरवीर भयो कृतकृत्य महाव्रत-धारी ।
दै करता-पन आपन ताहि, दयी करतार दुवौ कर तारी ॥३५॥

इन्द्रजीत-प्रशंसा

मेघ ज्यों गँभीर बानी, सुनत सखा-सिखीन
सुख, अरि डरन जवासे ज्यों जरत है।
जा के भुजदंड भुवलोक कौं अभय-धुज,
देखि-देखि दुजन भुजंग ज्यों डरत है॥
तोरिबे कौं गढ़-तरु होत हैं सिला-सरूप,
राखिबे को द्वारन किवार ज्यों अरत है।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग-जुग,
केसौदास जा के राज राज सो करत है ॥३६॥

ओड़छा-वर्णन

चहूँ भाग बाग वन, मानहु सघन घन,
सोभा की सी साला, हंस-माला सी सरित-वर।
ऊँचे-ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची, जनु
कौसिक की कीन्हीं गंगा खेलत तरल-तर॥
आपने सुखनि आगे निंदत नरिंद, और
घर-घर देखियत देवता से नारि-नर।
केसौदास, त्रास जहाँ केवल अदृस्ट ही को,
वारियै नगर और ओरछा नगर पर ॥३७॥

रसिकप्रिया

श्रीकृष्ण

चपला पट, मोर-किरीट लसै मघवा-धनु, सोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत बेनु बजावत, मित्र - मयूर नचावत हैं॥
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्तकी ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घने घन-बेष धरे जु बने बन तें ब्रज आवत हैं॥१॥

राधाकृष्ण

केसव एक समै हरि-राधिका आसन एक लसै रँग-भीने।
आनँद सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग-दीने॥
भाल के लाल में बाल विलोकत ही भरि लालन लोचन लीने।
सासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीने॥२॥

नायिका

केसव सूने निकेतन, सूनी विलोकनि सों अवलोकि सदाई।
सुनिधी साल सुनै-पगु है, करि आदर सुनिधी बान सदाई॥
सूरी सों खोलि, सुधाकर सों मुख मोरि लई वसुधा की सुघाई।
सूने सुधार सबै, सतती चर कैसे किये अति हेरे कन्हाई॥३॥

सोहैं दिवाइ दिवाइ सखी इक वारक कानन आनि वसाये ।
जानै को केसव, कानन तें कित है हरि नैननि माँझ सिधाये ॥
लाज के साज धरे ही रहे, तब नैनन लै मन ही सों मिलाये ।
कैसी करौं अब क्यों निकसैं री, हरे-ई-हरे हिय में हरि आये ॥४॥

पूर्वानुराग

केसव, कैसेहुँ ईठ न दीठ, है दीठि परे रति-ईठ कन्हाई ।
ता दिन तें मन मेरे को आनि भयी सों भयी,कहि क्योंहु न जाई ॥
होहिगी हाँसी,जो आवै कहूँ कहि,जानि हितू हित बूझन आई ।
कैसे मिलौं री,मिले बिन क्यों रहौं, नैननि हेत, हिये डर माई ।५॥

हँसि बोलत ही सु हँसै सब, केसव, लाज भगावत लोक भगै ।
कछु बात चलावत बैर चलै, मन आनत ही मनमत्थ जगै ॥
सखि तू जो कही सो हुती मन मेरे ही,जानि यहै न हियो उमगै ।
हरि त्यों नेकु दीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोग लगैं ॥६॥

वियोग

हरित-हरित हार हेरत हियो हरत,
हारौं हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं ।
बन-माली ब्रज पर बरखत बन-माली,
बनमाली दूर, दुख, केसव कैसे सहौं ?।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमल-नैन,
होऊँगी कमल-नैनि,और हौं कहा कहौं ?॥
आप-घने घनस्याम घन ही से होत, घन
स्यामनिके द्यौस घनस्याम बिन क्यों रहौं ॥७॥

रसिकप्रिया

श्रीकृष्ण

चपला पट, मोर-किरीट लसै मघवा-धनु, सोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत बेनु बजावत, मित्र-मयूर नचावत हैं॥
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्तकी ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घने घन-बेष धरे जु बने बन तें ब्रज आवत हैं॥१॥

राधाकृष्ण

केसव एक समै हरि-राधिका आसन एक लसे रँग-भीने।
आनँद सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग-दीने॥
भाल के लाल में बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीने।
सासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीने॥२॥

नायिका

देखत नैन सिरोरुह, मृगी बिलोकनि सों अवलोकि सदाई।
भाँति दै दान नैन-चकुटी हरि आदर करि बान सदाई॥
सारी सों ओढ़ि, सुधाकर की छुप सौंपि लई बसुधा की सुधाई।
सूने सुमार लखै, मानो चर कैसे किये अति देह कन्हाई॥३॥

सोहैं दिवाइ दिवाइ सखी इक बारक कानन आनि बसाये ।
जानै को केसव, कानन तें कित है हरि नैननि माँझ सिधाये ॥
लाज के साज धरे ही रहे, तब नैनन लै मन ही सों मिलाये ।
कैसी करौं अब क्यों निकसैं री, हरे-ई-हरे हिय में हरि आये ॥४॥

पूर्वानुराग

केसव, कैसेहुँ ईठ न दीठ, है दीठि परे रति-ईठ कन्हाई ।
ता दिन तें मन मेरे को आनि भयी सों भयी, कहि क्योंहु न जाई ॥
होहिगी हाँसी, जो आवै कहूँ कहि, जानि हितू हित बूझन आई ।
कैसे मिलौं री, मिले बिन क्यों रहौं, नैननि हेत, हिये डर माई ।५॥

हँसि बोलत ही सु हँसै सब, केसव, लाज भगावत लोक भगे ।
कछु बात चलावत बैर चलै, मन आनत ही मनमत्थ जगै ॥
सखि तू जो कही सो हुती मन मेरे ही, जानि यहै न हियो उमगै ।
हरि त्यों नेकु दीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोग लगैं ॥६॥

वियोग

हरित-हरित हार हेरत हियो हरत,
हारौं हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं ।
बन-माली ब्रज पर बरखत बन-माली,
बनमाली दूर, दुख, केसव कैसे सहौं ?।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमल-नैन,
होऊँगी कमल-नैनि, और हौं कहा कहौं ?॥
आप-घने घनस्याम घन ही से होत, घन
स्यामनिके द्यौस घनस्याम बिन क्यों रहौं ॥७॥

घोर घने घन घोरत सज्जल, उज्जल कज्जल की रुचि राँचैं
फूलें फिरैं इभ से नभ पाइ कै सावन को पहिली तिथि पाँचैं ॥
चौहूँ दिसा तड़िता तरपै, डरपै बनिता, कहि केसव साँचैं ।
जानि मनो ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल-कुटुंबिनी नाँचैं ॥८॥

चन्द्रोपालंभ

चंद नहीं विष-कंद है, केसव, राहु यही गुन लीलि न लीनो ।
कुंभज पावन जानि अपावन थोंकि दियो, पवि जान न दीनो ॥
या सों सुधाधर, संग विसाधर नाम धरो, विधि है विधि हीनो ।
सूर सों, माई, कहा कहियै जिन पापु लै आपु बराबर कीनो ॥९॥

निद्रा

आवै न आवैगी, आलिन आगे हौ, डोलिहै, मानहुँ मोल लयी है ।
सोवै न सोवन देइ न यों तव सों इनमें उन साथ दयी है ।
मेरियै भूल, कहा कहौं, केसव, सौति कहूँ ते सहेली भयी है ।
स्वारथ ही हितू है सब कै, परदेस गये हरि नींद गयी है ॥१०॥

विरह

फूल न सिंगार, सूल फूलन है हरि बिन,
दूरि करि माला बाला-व्याल सी लगति है ।
सीकर मलाइ जानि, चीकन सिलाइ मानि,
केसव, सुगंध वायु वाउ सी लगति है ॥
चंदन पहार जानि, भार-सो मदन तन,
कुंदन न लाइ अंग, आग सी लगति है ।
सार-सार बरजनि, सारसी है ? दासी आनि
सोरी न सकाइ, सौरि सिन सी लगति है ॥११॥

सीतल समीर डारि, चंद्र चंद्रिका निवारि,
केसौदास, ऐसे हू तो हरतु हिरातु है ।
फूलन फैलाइ डारि, झारि डारि घनसार,
चंदन को डारि चित चौगुनो पिरातु है ।
नीर-हीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही तें,
छीर कै छिरीके कहा धीरजु धरतु है ।
पायी है मैं पीर ? कियौं चोंटी उपचार करै ?
आगि को तो डाढ़ो अंग आगि ही सिरातु है ॥१२॥

कौन के न प्रीति ? को न प्रीतमहि बिछुरत ?
तेरे ही अनोखे पतिव्रत गाइयतु है ।
जतन करे ही भले आवैं हाथ, केसौदास,
और कहो पच्छिन के पाछे धाइयतु है ॥
उठि चलो जो न मानै, काहू की बलाइ जानै,
मान सों जो पहिचानै ताके आइयतु है ।
या के तो है 'आजु ही मिलौं कि मरि जाऊँ', माई,
आग लागे, मेरी आली मेह पाइयतु है ॥१३॥

अन्योक्ति

जात नहीं कदली की गलीन, भली विधि हो वदली मुख लावै ।
चाहै न चंप-कली की थली, मलिनो नलिनी की दिसान सिधावै ॥
जो कोउ, केसव, नाग लवंग-लता, लवली-अवलीन चरावै ।
खारक-दाख खवाइ मरौ किन, ऊँटहिं ऊँटकटारहि भावै ॥१४॥

गोपी-विनोद

सखि, बात सुनो इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती लकै ।
पुन बाँधि लयी सु नये नतना रु कहूँ-कहूँ बुंद करीं छल कै ॥
निकसो उहि गैल हुते जहँ मोहन, लीनी उतारि जबै चल कै ।
पतुकी धरि स्याम खिसाइ रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै ॥१५॥

कृष्ण-गोपी-विवाद

दै दधि, दीन्हो उधार हो ? केसव, दानि कहा जब मोल लै खैहैं ? ।
दीने बिना तो गयी हो गयी, न गयी न गयी, घर ही फिरि जैहैं ॥
गो हितु ? बैर कियो ? अब हो हितु ? बैर किये बरु नीको ही रैहैं ।
बैर कै गोरस बेचहुगी, अहो ? बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न दैहैं ॥१६॥

---

[४]

विज्ञान गीता

(१)

भागीरथी जहँ ऐसि है केसव, साधुन के जहँ पुंज लसैं रे।
सन्तत एक विवेक सों, वेद-विचारन सों, जहँ जीव फसैं रे।
तारक मंत्र के दाइक लाइक आपु जहाँ जगदीस बसैं रे।
साधन सुद्ध समाधि जहाँ, तहँ कैसे प्रबोध-उदोत नसैं रे॥

(२)

अंध ज्यों अंधनि साथ निरंध कुआँ परिहू न हिये पछितानो।
बंधु कै मानत बंधनहारनि दीने विषै-विष खात मिठानो॥
केसव आपने दासनि को फिरि दास भयो भव, जद्यपि रानो।
भूलि गई प्रभुता, लग्यो जीवहि बंदि परे भलो बंदियखानो॥

(३)

केसव क्यों हूँ भरयो न परै, अरु जोर भरे भय की अधिकाई।
रीतत तौ रितयो सु घरीकहुँ, रीति गये अति आरतताई।
रीतो भलो न भरो कैसेहुँ, रीते-भरे विनु कैसे रहाई।
पाइयैं क्यों परमेस्वर की गति, पेटहु की गति जानि न जाई॥

(४)

पेटनि-पेटनि ही भटक्यो बहु, पेटनि की पदवी न नक्यो जू।
पेट तें पेट लियो निकस्यो, फिरिकै पुनि पेट ही सों अटक्यो जू।
पेटको चेरो सबै जग, काहू के पेट न पेट समात तक्यो जू।
पेट के पंथ न पावहु, केसव, पेटहि पोखत पेट पक्यो जू॥

(५)

ठाढ़ेहिं खैयतु, वैठेहिं खैयतु, खात परेहूँ महासुख पायो।
खातहिं खात सबै मरि जात, सु खैबोई-पीबो मनै पुनि भायो।
आवत-जात निरै-दिवि, केसव, कौन-हि-कौन कहा नहिं खायो।
खैबो तऊ न उबीठतु है जग, श्रीजगदीस बुरे ढँग लायो॥

(६)

दान दया-सुभसील सखा त्रिभुकैं, गुन भिच्छुक को त्रिभुकावैं
साधु-सुधी सुरभी सब, केसव, भाजि गयीं, भ्रम भूरि भजावैं॥
सज्जन-संग बछेरू डरैं, विडरैं वृखभादि, प्रवेस न पावैं।
बार बड़े अघ-बाव बँधे, उर-मंदिर बाल-गोपाल न जावैं॥

(७)

खैंचत लोभ दसो दिसि को, गहि मोह महा इत पासिक डारे।
ऊँचे तें गर्व गिरावत, क्रोध मों जीवहि लूहर लावत भारे॥
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों, केसव, मारत कामके बान निनारे।
मारत पाँच करे पंचकूटहि, का सौं कहैं जग-जीव विचारे॥

(८)

भूलत हैं कुल-धर्म सबै तब हीं, जब ही चढ़ आनि प्रसै जू।
केसव, वेद-पुरानन को न गुनै-समुझै, न त्रसै न हँसै जू॥
देवन तें नरदेवन तें नर तें वर बानर ज्यों विलसै जू।
जंत्र न मंत्र न मूरि गनै, जग जीवन काम-पिसाच बसै जू॥

(९)

ग्यानिन के तनत्रानन को; कहि; फूल के बानन बेधत को तो।
बाइ लगाइ विवेकन को बहु साधक को, कहि, बाधक होतो॥
और को केसव लूटतो जन्म अनेकन के तपसान को पोतो।
तौ सम-लोक सबै जग जातो, जो काम बड़ो बटपार न होतो॥

(१०)

दान-सयानन के कलपद्रुम टूटत, ज्यों रिन ईस के माँगे।
सूखत सागर से सुख, केसव, ज्यों दुख श्रीहरि के अनुरागे॥
पुन्य बिलात पहारन से पल, ज्यों अघ राघव की निसि जागे।
ज्यों द्विज-दोख तें संतति नासति, त्यों गुन भाजत लोभ के आगे॥

(११)

काँपै उर-बानि, डगै बर डीठि, तुचा ति कुचै, सकुचै मति-बेली।
नवै नव ग्रीव, थकै गति, केसव, बालक तें सँग-ही-सँग खेली॥
लिये सब आधिन-व्याधिन संग, जरा जब आवै जुरा की सहेली।
भगै सब देह-दसा, जिय साथ; रहै दुरि दौरि दुरासा अकेली॥

(१२)

दिन-ही-दिन बाढ़त जाइ हिये,
जरि जाइ समूल, सो औखदि खैहै ? ।
किधौं याहि के साथ अनाथ ज्यौं केसव,
आवत-जात सदा दुख सैहै ? ॥
जग जाकी तू जोति जगै, जड़ जीव रे,
कैसेहुँ ता पहँ जाइ न पैहै ।
सुनि, बाल-दसा गयी, ज्वानी गयी,
जरि जैहै जरा ऊ, दुरासा न जैहै ॥

(१३)

आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति ।
धीरन्ह धीरज बिन करै तिसना किसना राति ॥

(१४)

कौन गनै यहि लोक तरीन, बिलोकि-बिलोकि जहाजन बोरै ।
लाज बिसाल लता लपटो तन धीरज-सत्य तमालन तोरै ॥
बंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक क्रिस्ना ।
पाट बड़ो, कहुँ घाट न, केसव, क्यों तरि जाइ तरंगनि त्रिस्ना ॥

(१५)

पैरत पाप पयोनिधि में नर मूढ़ मनोज-जहाज चढ़ोई ।
खेलतऊ न तजै जड़ जीव, नऊ बड़वानल-कोध डढ़ोई ॥

झूठ-तरंगिनि में उरझै सु, इतै पर लोभ प्रवाह घढ़ोई।
बूड़त है तेहि तें उबरें, कहि केसव, काहे न पाठ पढ़ोई॥

(१६)

फूलत हौ मुख देखि, न भूलहु, लाभ यहै भली बात सिखावौ॥
जौ ललकै अपमारग को मनु, तौ दुख दै सतमारग लावौ।
मूढ़न साथ परे फिर हाथ न आइ है नाथ, न माथ नसावौ।
नाकुल को अवलोकि के, केसव, व्यालिन ज्यों मनको न पठावौ॥

(१७)

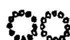
हृदय-वृच्छ सों वासना, लता न लपटति जाहि।
राग-द्वेस फल ना फलैं, मृत्यु न मारे ताहि॥

(१८)

जग को कारन एक मन, मन को जीत अजीत।
मन को मन सुनि सत्रु है, मन ही को मन मीत॥

(१६)

निसि-वासर वस्तु-विचार करै, मुख साँच हिये करुना-धनु है।
अघ-निग्रह, संग्रह धर्म-कथानि, परिग्रह साधुन को गनु है॥
कहि केसव, जोग जगै हिय भीतर, वाहर भोगन सों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनके बन ही घर है, घर ही बनु है॥



टिप्पणियाँ

मंगलाचरण

१ बालक—बालक हाथी। मृणालनि—कमल की नालों को। अकाल—अकाल में उत्पन्न। दीह—दीर्घ, बड़े। हठि—हठ-पूर्वक। पद्मिनी के पात सम—जिस प्रकार बालक हाथी कमलिनी के पत्तों को सहज ही उखाड़ डालता है। कलुख—पाप, जिस प्रकार छोटा हाथी कीचड़ को ठेल देता है उसी प्रकार जो पापों को ठेल कर पाताल पहुँचा देते हैं। कै—कर के। कलंक-अंक—कलंक का चिह्न। भव-सीस-सम—महादेव के सिर पर स्थित चन्द्रमा के समान (महादेव के सिरपर द्वितीया का चन्द्रमा रहता है जो निष्कलंक होता है)। दास के वपुख को—भक्त के शरीर को। सांकरे की—संकट में पड़े हुए की। सांकरनि—संकट की जंजीरें। सनमुख होत—शरण में आते ही। दसमुख - मुख इ०—(१) दशों दिशाओं के लोगों के मुख, गणेश जी के मुख को जोहते हैं। (२) दश मुख वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश के मुख गणेश जी का मुख जोहते हैं।

२ उदारता—महिमा। उदार—महान। तपवृद्ध—तप में बड़े। बड़े तपस्वी। केहूँ—किसी ने। केहूँ—कहीं पर, या किसी प्रकार। काहू पै—किसी से। पति—ब्रह्मा। पूत—महादेव, जो ब्रह्मा के पुत्र हैं। नाती—कार्त्तिकेय।

१६. करतारी—करतार की। गारी—लक्ष्मी का अवतार होने के कारण वाण सीता को पूज्या मानता है। राज करौं—अर्थात मुझे नहीं चाहिये।

२०. जुरे—जुड़नेपर।

२१. आसन-वासन—आसन छोड़ और वस्त्र उतार। धनुष उठाने को तय्यार हो। मद-नासन—गर्व तोड़ने वाले को। सासन—आज्ञा (जनक की)। पूजत—पूरा हो। पूजे—पूरा किये।

२२. हैहय-राज—सहस्त्रार्जुन जिसने रावणको बाँध लिया था।

२३. नाल—कमल-नाल। सर्वमंगला—पार्वती। सर्ब—महादेव। आयुध—धनुष जैसे महादेव के अनेक आयुध।

२४. रारि—झगड़ा।

२५. पीसजहु—पिस जाओगे।

२६. निराकुल—किंकर्त्तव्यविमूढ़। केहूँ—कैसे भी। बिभूति—ऐश्वर्य।

२८. गुरु—अर्थात् महादेव। असमंजस—दुविधा।

३०. सर—बाण से। आसर—असुर।

३१. अनंग—विदेह।

(२) लंका में हनुमान

१. गिरि-गज-गंड—पहाड़ रूपी हाथी के कपोल पर से। कलंक-रंक-को—कलंक रहित (सीता के पदपंकज) की ओर। हवाई—आसमानी, अग्निबाण। कमान—तोप।

२. नाकपति-छत्रु—मैनाक पर्वत। अंतरिच्छही—आकाश से ही देख कर अपने शुद्ध चरण से उसे जरा छू दिया।

४. दंस-दसा—मच्छर का रूप। वनराजि-विलासी—वनों में विहार करने वाला (बंदर)।

५. कौन इ०—किसके भेजे हुए हो।

७. घर ही०—वापस ही लौटना होगा।

८. रस भीनी—रसों से भरी।

९. हरि—वानर।

११. आवझ—एक बाजा।

१३. किन्नरी-(१) किन्नर स्त्री (२) वीणा। नगी-कन्यका—पहाड़ी बालाएँ।

१४. हाला—मदिरा। कोक की कारिका—कोकशास्त्र के सूत्र।

१५. सुद्ध-गीता—पवित्र यशवाली।

१६. एक बेनी—केशों की एक बेनी बनाये हुए।

१८. मायान—मायाओं में घिरी हुई। संबर—एक असुर जो प्रद्युम्न रूप में काम को चुरा लाया था। काम-बामा—रति। राम-रामा—सीता।

२०-२२. बसैं इ०—इन तीन पद्यों के दो दो अर्थ हैं, एक अर्थ से राम की निंदा सूचित होती है दूसरी से ईश्वर-राम की स्तुति। देखै न कोऊ—(१) कोई उसे नहीं देखता, कोई उसकी पर्वाह नहीं करता। (२) कोई उसे देख नहीं पाता। महा-बावरो—(१) अत्यन्त बावला। (२) विरक्त योगी जो ईश्वरभक्ति में पागल हो। कृतघ्नी—(१) कृतघ्न, (२) कर्मों का नाशक। कुदाता - (१) कृपण, (२) पृथ्वी को देने वाला। कुकन्या—(१) दुष्ट स्त्रियाँ, (२) पृथ्वी की कन्या, सीता। नग्ग-मुण्डी—(१) भिखारी आदि नीच जन, (२) साधु-महात्मा। हितू—मित्र। अनाथ—(१) जिसका कोई रक्षक या पालक नहीं, (२) जिसका कोई स्वामी नहीं। जो सब का स्वामी है। अनाथानुसारी—(१) अनाथ ही जिसके साथ रहते हैं, (२) अनाथ जिसका अनुसरण करते हैं, जो अनाथों को शरण देता

४९. कोटि—करोड़ों । अक्ष—अक्षयकुमार, रावण का एक पुत्र ।

५०. दूषन—(१) दूषण नाम का राक्षस (२) नाश करने वाला । गोपद—गाय के पैर से बना गड्ढा । कुँई—ढेरी ।

५३. वानसी—वस्त्र । गार—गान ।

५४. झंझरी—झरोखे की जाली । क्षुद्र—नीच जन ।

५५. अटा—अटारी । नाग=(काला) हाथी ।

५८. लोल—चंचल । दैत्य-नारी—असुर स्त्रियाँ ।

५९. उच्च कला हुँ—ऊँचे उठकर । पूर—नाला । गिरा—सरस्वती नदी जिसका रँग सुनहरा है । मनि—चूड़ामणि जो सीता ने हनुमान को दी थी ।

६०. बेर—समय । पूरब जाम—पहले पहर में ।

२—अंगद-रावण-संवाद

१–२. करहाट—सोना । जीव—बृहस्पति । अनखै—दुष्ट, शत्रु ।

७–८. देवदूषण—देवताओं का शत्रु, रावण । निकाहि—खेल ही में, सहज ही । त्रिकूट—जिस पर्वत पर लंका बसी थी । असोकबागहि—अशोक-वाटिका को । सोक दयो—उजाड़ कर ।

९–१२ ईस—राम । लोकेस—दिग्पाल । स्यों—सहित । छितछत्र—पृथ्वी के क्षत्रिय । हैहयराज—सहस्रार्जुन । धनु-रेख—लक्ष्मण द्वारा बनाई हुई । वानर—अर्थात् हनुमान । जगद्-जरी—जगने की चीज़ों से जड़ी हुई ।

१३–१४. चपि—दबकर । बादि—व्यर्थ । प्रशस्ति—प्रशंसा । बैरक—

हैं। या जो अनाथों के पीछे फिरता है, उसका सदा ध्यान रखता है—दंडी इ०—(१) दंडित, जटावाले, मुंडित भिखारी आदि नीच जन, (२) तपस्वी। तुम्हें दूखैं—(१) तुम को दोष लगाने वाले, (२) लक्ष्मी को हीन समझने वाले। निर्गुणी—(१) गुणहीन, (२) निर्गुण, गुणों से परे। नृदेवी—रानी। मघोनी—इन्द्राणी, मृडानी—पार्वती। नचै इ०—तुम्हारे आगे।

२४. भासै—शोभित होते हैं। स्यों—सहित।

२५. तनु—छोटी सी, नाकी—उलांघी। बिड—बिण्डा, छीवैं—छुए।

२६. बिसर्पी—दौड़ने वाले।

२७. जुक्ति इ०—उपायों के द्वारा ऊँच-नीच समझाकर।

२८. अंग—तेरे अंग में। ठौर—अवसर। सियरी—ठंढी।

३०. संभ्रम—भ्रम या घबराहट। आबाल—बचपन से।

३२. नीठ—कठिनता से।

३३. तन—ओर। चाहि—देख। बिरूप—रहित।

३५. अज—दशरथ के पिता। नंद—पुत्र।

३८. पूजैं—पहुँचते हैं।

३६, श्री—राजलक्ष्मी (राज्य)। अनीति—राम को छोड़कर।

४२. कंकन इ०—राम तुम्हारे विरह में इतने कृश हो गये हैं कि वे इस मुँदरी को कंगन करते हैं।

४३. राति-दीह—रात-दिन। जमराज-जनी—मानो यमराज द्वारा उत्पन्न की हुई (यातनाएँ)। अथवा दीह=लंबी, जनी=जनका स्त्रीलिंग, किंकरी। कैं—या।

४६. घोष—निवास।

४७. सनेह—(१) तेल, (२) प्रेम।

४९. कोरि--करोड़ों। अच्छ--अक्षयकुमार, रावण का एक पुत्र।

५०. दूखन--(१) दूषण नाम का राक्षस (२) नाश करने वाला। गोपद--गाय के पैर से बना गड्ढा। ड्यौढ़ी--देहली।

५३. बासती--वस्त्र। रार--राल।

५४. झँझरी--झरोखे की जाली। क्षुद्र--नीच जन।

५५. अटा--अटारी। नाग=(काला) हाथी।

५८. लोल--चंचल। दैत्य-जाया--असुर स्त्रियाँ।

५९. उच्च रुलो ह्वै--ऊँचे उड़कर। पूर--नाला। गिरा--सरस्वती नदी जिसका रँग सुनहरा है। मनि--चूड़ामनि जो सीता ने हनुमान को दी थी।

६०. बेर--समय। पूरब जाम--पहले पहर में।

२--अंगद-रावण-संवाद

१-३. करहाट--सोना। जीव--बृहस्पति। अनैसे--दुष्ट, शत्रु।

७-८. देवदूखण--देवताओं का शत्रु, रावण। खिलारि--खेल ही में, सहज ही। त्रिकूट--जिस पर्वत पर लंका बसी थी। असोकबनीहि--अशोक-वाटिका को। सोक दयो--उजाड़ कर।

९-१२ ईस--राम। लोकेस--दिग्पाल। स्यों--सहित। छितछत्र--पृथ्वी के क्षत्रिय। हैहयराज--सहस्रार्जुन। धनु-रेख--लक्ष्मण द्वारा बनाई हुई। बानर--अर्थात् हनूमान। जराइ-जरी--जड़ने की चीज़ों से जड़ी हुई।

१३-१४. चपि--दबकर। बादि-व्यर्थ। प्रशस्ति--प्रशंसा। चेटक--

इन्द्रजाल । तज्यो—धनुष ने तनिक भी भूमि नहीं छोड़ी, ज़रा भी नहीं हिला । चिर-चेरिन—बुढ़िया दासियों ने ।

१५. हनू—हनुमान । आठहुं—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवन्त, नील, सुषेण, हनूमान, विभीषण ।

१७. निलगु—बुरा ।

१६. सम—जो न शत्रु हैं न मित्र । नूत—नयी । अभिलाख-अभिलाखहू-इच्छा करो ।

२१—२३. मिवा—मियाग । नरै-विहारी—नरकगामी । छपानाथ—चन्द्रमा । सक्का—भिश्ती, पानी ढोने वाले । सिखी—अग्नि । महादण्डधारी—भैरव ।

२४. पेट चढ्यो—पेट में आया । पलका—पलंग । सो—वह परमात्मा । रट्यो—नाम लिया । गयो चढ़ि चित्त—चित्त में चढ़ा है, चित्त में अभिमान से भरा है ।

२६—३२. बाज—जादूगर, इन्द्रजाली । भगर—इन्द्रजाल । रिखि-नि—अहिल्या । रिझवाने—तुम आनन्द हो इसलिये । अम नुमी ३०—भूमि को मनुष्यों और बंदरों से रहित । तिन के—परशुराम के । बर—बल । पुंश्चलि—दुर्मलिनी । भरकौ—मंथन । गुन—काम । बानरराज—

४—रामाश्वमेध

१–७. गाथ—बात, कथा। श्रुति—कान। पट्ट—विजय पट्ट। शत्रुहंता—शत्रुघ्न। सभोग—भोग्य वस्तुओं सहित। भेव—भेद, प्रकार। नरदेव—राजा।

८. सूर—सूर्य। स्रवै—बरसाता है। लाजनि—खीलों को।

९–१० माई—समाता है। गाथ की—कीर्त्ति फैल यी। जन—अपने आदमी। तिनकी—उन स्थानों की। मुद्रित इ० सात समुद्रों से मुद्रित पृथ्वी पर अपनी मोहर छाप दी।

११. अवगाहि कै—मथ कर।

१३. एक वीरा—जिसका पति संसार का सर्व श्रेष्ठ वीर है। एक वीरा इ०—एक वीरा कौशल्या है, उसका पुत्र राम है, उस राम ने यह घोड़ा छोड़ा है, जो बली हो इसे पकड़े।

१५. मोक्यो—जो लगभग छोड़ा ही जा चुका था।

१६. लवणासुर—एक असुर जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। द्विज-दोस—ब्राह्मणों के प्रति किये गये अपराध, ब्रह्महत्या आदि।

१८. गात पूजियो क्यों कि वे फूल की तरह जान पड़े।

१९–२१. तूल—रूई। रिपुहा—शत्रुघ्न। को—के लिये। पत्री—वाण। मोहे—बेहोश हुए।

२४–३१. गीता—कथा। पतिदेवता—पतिव्रता। गाहियो—वश में किया, बांधा। बर—बल। सो बर—उस सेना ने। पसुपति—महादेव।

३२. भग्गुल—भगोड़े।

४२–४३. असु—प्रान। घटि—कमी। सूर—सूर्य। इषुधी—तरकश।

४६. बार--(१) समय (२) देरी। बारन--हाथी। विरँचे--ब्रह्मा को (या क्रुद्ध होते हैं)। रँचै--रँगते हैं।

४७-५१. चये--समूह। दाम--बंधन। वइक्रम--वय:क्रम, उमर। लोचत--मुग्ध होते हैं। भजौ--शरण में आओ। अलोक--अपकीर्त्ति।

५६. जै--मत, नहीं।

६६. नृपता--राजाओं का समूह।

६७-६८. दुरन्त--भयंकर। चक्र--चकवा।

७६. सूरसुत--सुग्रीव।

८३. देववधू--सीता।

९३-९४. ईठ--बड़े। भोइ--भर कर, भीगकर।

९५-१०४. चिता--चिंता रूपी अग्नि। सेही--एक जानवर जिसके शरीर में काँटे ही काँटे होते हैं। तूल--तुल्य। बटा--गेंद। गो चल--चल चला गया। भंगी--भंग, भाग। सुर--आवाज़। करे--रचे। भूधर--पहाड़ों के समान। इभ--हाथी। गरे के इ०--गले के कटने पर भी। नग--पर्वत। नाग--हाथी।

१२३. नीरज--मोती। ऐन--समान।

१३४-१३५. ईठि--मित्रता। बात--वस्तु। जी--मत। अमित्र--शत्रु। तुरन--नचन। जटी--जटाधारी।

१३८. निबरौ--समाप्त करो।

१४०. तेरह--चार दिशाओं के पड़ोसी चार राज्य, (जो शत्रु होते हैं) उन राज्यों के पड़ोसी चार राज्य, (जो मित्र होते हैं), फिर उन मित्रराज्यों के पड़ोसी चार राज्य (जो उदासीन होते हैं) और तेरहवाँ स्वयं अपना राज्य।

५—श्लेषात्मक पद्य

१. विमानी इ०—(१) जिसने राजहंसों को अपना विमान बना रखा है (ब्रह्मा)। (२) जिसने श्रेष्ठ राजाओं को मान से मंडित कर दिया है (दशरथ)। विविध इ०—(१) अनेक देवताओं से युक्त (मेरु), (२) अनेक विद्वानों से युक्त (दशरथ)। अचल—पहाड़। दीपित—प्रकाशित है। दिलीप—सूर्य वंश का एक प्रसिद्ध राजा। सुदक्षिणा इ० (१) अपनी पतिव्रता रानी सुदक्षिणा का बल है (दिलीप) (२) अच्छी दक्षिणा का बल है (दशरथ)। उजागर—प्रसिद्ध। कै—अथवा। बहु इ०—(१) अनेक नदियों का पति (समुद्र), (२) अनेक सेनाओं का पति (दशरथ)।

छनदा इ०—(१) छनदा-न-प्रिय अर्थात् जो रात्रि को प्यारा नहीं है (सूर्य)। (२) जिसे क्षण अर्थात् उत्सव और दान प्यारे हैं (दशरथ)। भागीरथ इ० (१) राजा भागीरथ के पीछे-पीछे चलने वाला (गंगाजल), (२) राजा भागीरथ की चलायी मर्यादा का पालन करने वाला (दशरथ)।

५. लाल मुख वाला सूर्य रूपी बंदर गगन-रूपी तरु पर जा चढ़ा और क्रुद्ध होकर उसे हिलाकर समस्त तारा-रूपी फूलों से रहित कर दिया (सांग रूपक)।

६. द्विजराज (चन्द्रमा) ने ज्यों ही तनिक वारुणी (पश्चिम दिशा) से प्रेम किया त्योंही भगवान (सूर्य) ने उसे संपत्ति और शोभा के साज से रहित कर दिया। (समासोक्ति—द्विजराज=ब्राह्मण, वारुणी=मदिरा, भगवंत=भगवान। ब्राह्मण मदिरा से प्रेम करता है तो भगवान उसकी संपत्ति शोभा सब छीन लेते हैं)।

७, वहाँ ऐसी नगरी नहीं है जिसमें पद-पद पर हंस न हों; जहाँ

कमलों के झुंड न हों और जहाँ मोटे-मोटे तालाब न हों। वहाँ ऐसी स्त्री नहीं है जिसके प्रत्येक चरण में बिछुए न हों, जिसके मोतियों का हार न हो और जिसके पीन पयोधर न हों।

८. दान-कृपान-विधाननि सों—दान और तलवार के (कार्यों) से।

अंग इ०— वेदों के ६, राजनीति के ७ और योग के ८ अंगों से होने वाली।

वेदत्रयी इ०—विद्वत्ता और राजनीति का सुन्दर योग है, या योग के साथ विद्वत्ता और राजनीति में पूर्णता (पारंगतता) प्राप्त है।

९. निरै—नरक।

१० मेटि—भरकर। अचला—पृथ्वी। पालि इ०—विश्वामित्र के प्रण को पूरा करके, विश्वामित्र ने राजा को कहा था कि राम अवश्य धनुष तोड़ देंगे। घोषु—स्वर (टूटने की आवाज़ से)। ईस—महादेव। बोधु—जगाकर। जगदीश—विष्णु ने। बाधि—बाधा पहुँचाकर। साधि इ०—अपना मत सिद्ध कर।

१२. सुक्र मंडल=शुक्र पतंग।

१३. पीताम्बर—सफेद (या पीला) कपड़ा विशेष।

१४. श्रवण—कान। मकर=मकर के आकार के। ससि=मुख मंडल। श्रवण—श्रवण नक्षत्र (श्रवण—कान)। मकर—मकरराशि (मकराकृति कुंडल)।

१५. इंदुमती—राजा अज की अनुपम सुंदरी रानी। रुचि—शोभा से। हंस—सूर्य। जलजात—कमल। जातवेद—अग्नि। ओप—कान्ति। [illegible]—[illegible]। [illegible]—दर्पण। मदन इ०—सीता की शोभा को [illegible], दर्पण, कमल मदन, निदान काम भी हतश्री हो गया।

चंद इ०—बहुरूपिया चंद्रमा सीता के अनुरूप क्या विचारा जा सकता है? अनुरूप—रूप की बराबरी करने वाला। कै—क्या। रूप ही के रूपक—सौंदर्य के सब उपमान।

१७. मुद्रिका—पवित्री। स्रुवा—होम में आहुति देने की लकड़ी की कलछी। स्यों—युक्त, सहित। रस वीर—धनुष आदि का धारण वीर रस का धर्म है, पवित्री आदि का धारण सात्विक प्रकृति वाले ब्राह्मण आदि का धर्म है।

१८. सिखीन्ह—लपटों से, अग्निज्वाला से। कलंकित—कलंकी रावण की। कनंक—कनक। सितकंठ—महादेव।

१९. अरिहा—शत्रुघ्न।

२०. छत्र—छत्रिय। सची—स्त्री।

२२. अदेव—असुर। गरुड़ध्वज—विष्णु।

२३. सुंदरि—स्त्री (सीता)। श्रीफल फल्यो—सुन्दर फलों को प्राप्त किया हुआ। सिद्ध—तपस्वी=(राम)। साधन=लक्ष्मण। सिद्धि=सीता। लक्ष्मण और सीता के साथ राम ऐसे जान पड़ते हैं मानो सिद्ध तपस्या का फल प्राप्त करके साधन और सिद्धि के साथ जा रहा हो।

२४. वन में जाते हुये राम, सीता और लक्ष्मण ऐसे शोभित हो रहे हैं मानों सुन्दर मेघ, आकाश-गंगा और बिजली शरीर धारण किये शोभा देते हैं; अथवा मानो यमुना, गंगा और सरस्वती के अंशधारी (अवतार) हैं, जिनके भाग्य को बड़ा कहना चाहिये, अथवा मानो इन्द्र इन्द्राणी को लिये पुत्र जयन्त सहित पृथ्वीलोक पर शोभायमान हैं, अथवा शुक्ल और कृष्ण ये दोनों पक्ष और उनकी सन्धि (पूर्णिमा) शोभित हैं, अथवा संध्या, मध्याह्न और प्रातः इन तीनों कालों की तीनों

सन्ध्याएँ एकत्र हो गयी हैं। इन स्वच्छ-सुन्दर-तीनों व्यक्तियों को देख लोग अत्यन्त ही मोहित हो जाते हैं।

२५. वा सों—उस (चन्द्र को)। सुधाधर—(१) सुधा को धारण करने वाला (२) सुधामय अधर वाली। द्विजराय—ब्राह्मणों का पति। द्विजराजि—दन्तपंक्ति।

कला—(१) आकाश (२) नृत्य आदि कलाएँ। रत्नाकर—(१) समुद्र (२) रत्नों का समूह। अंबर—(१) आकाश (२) वस्त्र। कुवलय—(१) कुमोदिनी (२) पृथ्वी मंडल। कर—(१) किरण (२) करने वाली।

२६. केतु—(१) चिह्न (२) केतु असुर। आन—और, दूसरे। मुगल—मूगरचन्द, मूर्ख।

२७. जगचंद—जगत का चंद्र।

२८. खगगोचर भये—पक्षी आकाश में उड़ गये। वारन—हाथी। दीरघ—खूब, दूर तक।

२९. दुख की दुपटी—दुःख रूपी वस्त्र। निपटी हु०—मृत्यु का [illegible] पट गया। तारी—समाधि। निकटी—निकट ही। गुन हु०—ज्ञान का बड़ा ढेर। गुन धूरजटी—महादेव जी के से गुन (प्रभाव) वाला।

३०. छबि—शोभा। सैन—सेना। श्रीपत (१) लक्ष्मी, संपत्ति। (२) [illegible]।

३३. विष—(१) ज़हर (२) पानी । जीवनहार—(१) जीवन हरने वाला, मारने वाला, (२) पानी लेने वाला, पानी देने वाला ।

नोट—इस दोहे में विरोधाभास का चमत्कार है ।

३४. धूमपुर—धूम-समूह । धूमकेतु—अग्नि । धूमयोनि—बादल । पुत्रिका—पुतली । बगहंसा—बगुला । कामिनी—स्त्री (जोरू) । मठेस—मठधारी । साम—सामवेद । छाया-जाया—सीता का छाया-रूप ।

३६. बाचक—यहाँ भौंरा (भौंरा चम्पा के पास नहीं जाता) । असोक—अशोक । शोक छोड़ कर बिलकुल अशोक हो गया, किसी का शोक उस प्रभावित नहीं करता ।

करुना—(१) करना नामक वृक्ष (२) दया ।

३७, चक्रिन—सांपों से । चन्दन-बात—मलय पवन । अति दु०—वह मन को बुद्धिहीन बनाता है तो यह न्याय्य ही है, अनुचित नहीं है । मृग मित्र—चन्द्रमा । निशाचर-पद्धति—(१) राक्षसों का ढंग (२) रात्रि में चलना । प्रतिकूल—दुखदायी । जानै नहीं—पशु होने के कारण समझते नहीं । बनै—शोभा देता है । कमलाकर—(१) कमला का पिता (२) कमलों का आकर । कमलापति—कमला की अवतार सीतापति राम ।

वर्षा-वर्णन

४०-४८. तूर, तार, आवझ—बाजे विशेष । इन्द्रलोक-तिय—अप्सरा । मनै—मन को । स्यों—साथ । रतनावलि—रत्नों की माला, रत्नों की वंदनवार । देव—देवताओं ने । निरघात—प्रहार । गोरमदाइनि—इन्द्र-धनुष । जलधार वृथा ही—जलधारा नहीं है ।

(अपह्नुति अलंकार)। चंद्रवधू—(१) चन्द्र की वधू (२) बीर बहूटी। तरुनी—स्त्री (अनसूया)। उर में—गर्भ में (चन्द्र अत्रि का पुत्र कहा गया है)। किल—संस्कृत का एक अव्यय। अहिमाली—(१) महादेव (२) साँपों का झुण्ड।

ल्नाई—मिलाई। मुन—सहज ही। सुखमुन—स्वाभाविक। नैन अमल—(१) निर्मल नेत्र (२) नदियाँ निर्मल नहीं है। निकाई—सुन्दरता। करेनुका—(१) हथिनी (२) क=पानी, रेनुका=रेत। गमन—(१) चाल (२) जाना, आना जाना। मुकुत—(१) स्वच्छन्द (२) मुक्त, रहित। हंसक—(१) बिछुआ (२) हंस। अंबर—(१) वस्त्र (२) आकाश। बलित—घिरी हुई, युक्त। नीलकण्ठ—(१) महादेव (२) मोर। मति—मन।

पैरों में पहने हुये बिछुओं का सुखद स्वच्छन्द शब्द होता है उसी प्रकार वर्षा हंसों के सुन्दर शब्द से मुक्त (रहित) है (वर्षा में हंस चले जाते हैं)। कान्तिका सुन्दर वस्त्र पहनती है, वर्षा आकाश में घिरी हुई है। कान्तिका नीलकंठ महादेव के मन को मुग्ध करती है। वर्षा मोरों के मन को मुग्ध करती है।

४९ राम की उक्ति। अनुरूपक—सीता के इन अंगों की प्रतिमूर्त्तियाँ। गति इ०—यथासंख्या अलंकार। अवलंबि—आधार बना कर।

५१. वृद्ध—शरद ऋतु उज्वल या शुभ्र है इसलिये। सुजाति—(१) अच्छे कुल में उत्पन्न (दासी) (२) सुन्दर या सुन्दर मालती के फूलों से युक्त। जगावन—(१) दासी राजकुमारों को जगाती है (२) शरद आकर हमें सावधान होने को कहती है कि अब सीता की खोज का समय आ गया।

५२. रोदसी—आकाश और पृथ्वी। बलनि—(१) बल से (२) सैनिक-समूह। बलति—उमड़ती है। राजि—पंक्ति। पुरइन—कमलिनी। पुहुमी—पृथ्वी।

५३. भारत—भार से मारते हो। दचक—धक्का। दचकत—दबना। भोगवती—नागपुरी।

५४. बई—बोई। हुती हग इ०—सीता तुम्हारी दृष्टि में रूपवती थी।

५५. पर खोरहि—दूसरे का (सुग्रीव का) अपराध करके।

५६, बर—बल। किन—क्यों नहीं।

५७ अबार—देरी।

५८. मड़ै--ढक देता है। अरि कै--हट (मान) किये हुई।

५९. जल जोर इ०—जल के वेग से देवों का अंगराग उतर कर जल में मिल गया और उनके वस्त्राभूषण बह आये। सुर—सुरों को।

६०. लिंछ —धारा। नल—जिसने सेतु बाँधा।

६१. लगि—टकरा कर। फरि--उलट कर। पति इ०—पति समुद्र की आकाशनदी में प्रीति देख कर नदियाँ मानों रूठ कर पिता हिमालय के घर चल दीं।

६२. इस पद्य का अर्थ राम की सेना, विभीषण की राजश्री और रावण की मृत्यु इन तीनों पक्षों में लगेगा--

कुंतल--(१) जो कुंतल, ललित, नील, भ्रकुटि, धनुष, नयन, कुमुद, कटाक्ष और बाण आदि बंदरों से सदा सबल है, (२) जो सुन्दर काले बालों, धनुष सी भ्रकुटियों, कुमुद के समान नेत्रों और बाण जैसे कटाक्षों से सदा सबल (सौंदर्य के बल वाली) है, (३) जो भाला लिये हुये है, जिसका गहरा काला रंग है, जिसकी भ्रकुटी धनुष के समान है, जिसके नेत्रों में दुष्टतापूर्ण आनंद है, जिसके कटाक्ष-बाण के समान भयंकर हैं, जो सदा ही बलवान है।

सुग्रीव सहित इ०--(१) जो सुग्रीव के सहित है, तार और अंगद नाम के वानर जिसके भूषण हैं, जिसके मध्यभाग में केशरी और गज जाति के वानर चलते हुए शोभा देते हैं, (२) जिसकी सुन्दर ग्रीवा मोतियों से युक्त है, जिसके बजुबंद आदि गहने हैं, जिसका मध्यभाग (कटि-प्रदेश) सिंह के समान है, जिसकी चाल हाथी सी सुहावनी है। (३) जिसकी मोटी (सु) गर्दन ऊँचे स्वर (तार) से युक्त है अर्थात् जो जोर से पुकार रही है, जिसके अंगद आदि कोई सुन्दर भूषण नहीं,

(भूष=भूषा, न=नहीं) है, अर्थात् जो मुंडमाल आदि भयंकर गहने पहने हैं। जिसकी कमर में सिंह (की खाल) है, जिसकी हाथी के समान अस्तव्यस्त भयावनी चाल है (या, जिसके अंग मध्यम अर्थात् असुन्दर हैं और जिसकी चाल ऐसी है जैसी सिंह की हाथी पर झपटते समय होती है)।

विग्रहानुकूल—(१) युद्ध के अनुकूल, (२) अनुरूप अंगों वाली, (३) दुष्ट ग्रहों के अनुकूल।

लक्ष लक्ष ऋ०—(१) लाखों रीछों के बल से युक्त, (२) लाखों अनुकूल नक्षत्रों के बल वाली, बड़े सौभाग्यवाली, (३) लाखों रीछों के बराबर बलवाली।

ऋच्छराज मुखी—(१) रीछों का राजा जांबवंत जिसका प्रधान है, (२) चन्द्र-मुखी, (३) बड़े रीछ के समान भयंकर मुखवाली। दर कूच—कूच पर कूच करती हुई।

६४. वेनु—एक राजा। ईस—ईश्वर। विदेही—जनक।

६५. नठैं—नष्ट करते हैं। अनैसे—बुरे।

६६. मंत्र—सलाह। तंत्र—शास्त्र।

६७. सुरथ—एक राजा जिसका राज्य मंत्रियों ने छीन लिया। कवि—शुक्र। दासरथि-दूत—हनुमान।

६८. विख से—स्वाद में कटु फल में हानिकर। दाड़िमबीज से—स्वाद में मधुर फल में हितकर। गुड़ से—स्वाद में मधुर फलमें हानिकर। नींब से—स्वाद में कटु फल में हितकर।

६९. ओढ़ि—अपने ऊपर ले ली।

७१. जूथप—सेनापति। संहार काल—प्रलयकाल। काली—

नागिनी। रवत—रोता है।

७७. भृगुनंदन को परसा—परशुराम ने राम को धनुष दिया था, रावण को परशु का ध्यान रहा।

८७. भुवदेव—ब्राह्मण। बर—बलपूर्वक। मघवै—इन्द्र को।

८०. गजा—नगाड़ा बजाने का डंडा।

८१. देवनदी—आकाश-गंगा। नरदेव—राजा। हूकी—भयभीत। दंड द्व०—दो-दो घड़ी की (सेवा करने के निमित्त)।

८२. चूसैं—चूसते हैं, स्तनपान करते हैं। सुरभि—गाय। करन्ह—सूँड़ों से। आसन—बैठने की जगह। मद—गर्व। मदन—काम। डोरे—लाठी पकड़े हुए। सदन—घर, आश्रम।

८३. अनंता—पृथ्वी। समुद्रावधी—समुद्र पर्यन्त। सत ईति—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी, शुक, गृहयुद्ध—देश पर शत्रु का आक्रमण। जिन्हें—जिनके सामने कल्पवृक्ष अपने को तुच्छ समझ कर विमूढ बन जाते हैं। अल्प धी—अल्प होने की बुद्धि (भावना या समझ)।

८४. निम्नगा—नदी। छीर—दूध। पूर—प्रवाह।

८७. सती—महादेव की स्त्री।

८८. अलोक—अपयश।

८६. बालनाश—(१) बच्चों की मृत्यु। (२) केशों को मूँड़ना।

६०. द्विजवृत्तिन हरैं—(१) ब्राह्मण की वृत्तियाँ हरते हैं। (२) ब्राह्मण वृत्तियाँ पढ़ते हैं।

६१. नारी—(१) स्त्री, (२) नाड़ी। विधवा—(१) पतिहीन, (२) धव वृक्ष से रहित।

६३. आन जन्म—पुनर्जन्म नहीं लेते, मुक्त हो जाते हैं।

कविप्रिया

३. विष मातें—विष से मतवाले होते हैं।

४. नृपति-सुता—कोई कथा-विशेष। चक्र—चक्र, दिशा। माँगने—वामन रूप में। द्वारपाल—राजा बलि के। दूत—पांडवों के। सूत—अर्जुन के।

काठ इ॰—सांदीपनि गुरु के लिए लकड़ी तोड़ कर लाते थे, भला काठ में क्या पाठ सीखते थे ?

५. सोने की लता—नायिका। श्रीफल के फल—कुच। सरोज—मुख। निरूपत—निरूपण, वर्णन करते हुये। सुआ—नासिका। खंजन के बालक—नेत्र।

६. केसीराइ—कृष्ण।

७. कांदबिनी—मेघ-घटा। झुकना—क्रुद्ध होना।

८. रस—प्रेम, प्रसन्नता। भ्रम—अर्थात् व्यापार। बिभात—प्रभात दिन। सातों सुख—मिलाओ, पहला सुख नीरोगी काया, दूजा सुख है धन की माया इत्यादि। अथवा।

सुधि बुधि-निद्रा अंग-दुति-भूख-प्यास सुख सात।
नास होहिं ये विरह में—दुःख रूप बनि जात।

९. सहुँ—से, साथ। बालक तें—बचपन से। अबोल—न बोलना, दूर रहना।

१०. नेहनहे—प्रेम में बँधे हुए। बरथाई—कठिनता से। उमहे—उमड़े। कर्क—कर-कर। रहे—रुके।

१२. तरुन तन—पेड़ों पर। फूल—प्रफुल्लता का समय। चित्त—चित्त को भी।

नागिनी। रवत—रोता है।

७७. भृगुनंदन को परसा—परशुराम ने राम को धनुष दिया था, रावण को परशु का ध्यान रहा।

८७. भुवदेव—ब्राह्मण। बर—बलपूर्वक। मघवै—इन्द्र को।

८०. गजा—नगाड़ा बजाने का डंडा।

८१. देवनदी—आकाश-गंगा। नरदेव—राजा। हूकी—भयभीत। दंड इ०—दो-दो घड़ी की (सेवा करने के निमित्त)।

८२. चूसैं—चूंसते हैं, स्तनपान करते हैं। सुरभि—गाय। करन्ह—सूंड़ों से। आसन—बैठने की जगह। मद—गर्व। मदन—काम। डोरे—लाठी पकड़े हुए। सदन—घर, आश्रम।

८३. अनंता—पृथ्वी। समुद्रावधी—समुद्र पर्यन्त। सप्त ईति—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी, शुक, गृहयुद्ध—देश पर शत्रु का आक्रमण। जिन्हें—जिनके सामने कल्पवृक्ष अपने को तुच्छ समझ कर विमूढ बन जाते हैं। अल्प धी—अल्प होने की बुद्धि (भावना या समझ)।

८४. निम्नगा—नदी। छीर—दूध। पूर—प्रवाह।

८७. सती—महादेव की स्त्री।

८८. अलोक—अपयश।

८६. बालनाश—(१) बच्चों की मृत्यु। (२) केशों को मूँड़ना।

६०. द्विजवृत्तिन हरैं—(१) ब्राह्मण की वृत्तियाँ हरते हैं। (२) ब्राह्मण वृत्तियाँ पढ़ते हैं।

६१. नारी—(१) स्त्री, (२) नाड़ी। विधवा—(१) पतिहीन, (२) धव वृक्ष से रहित।

६३. आन जन्म—पुनर्जन्म नहीं लेते, मुक्त हो जाते हैं।

कविप्रिया

३. बिख मातें—विष से मतवाले होते हैं।

४. नृपति-सुता—कोई कथा-विशेष। चक—चक्र, दिशा। माँगने—वामन रूप में। द्वारपाल—राजा बलि के। दूत—पांडवों के। सूत—अर्जुन के।

काठ इ॰—सांदीपनि गुरु के लिए लकड़ी तोड़ कर लाते थे, भला काठ में क्या पाठ सीखते थे?

५. सोने की लता—नायिका। श्रीफल के फल—कुच। सरोज—मुख। निरूपत—निरूपण, वर्णन करते हुए। सुआ—नासिका। खंजन के बालक—नेत्र।

६. केसीराइ—कृष्ण।

७. स्पंदविनी—मेघ-घटा। कुकना—क्रुद्ध होना।

८. रस—प्रेम, प्रसन्नता। भ्रम—अर्थात् व्यापार। निभात—प्रभात दिन। सातों सुख—मिलाओ, पहला सुख नीरोगी काया, दूजा सुख है धन की माया इत्यादि। अथवा।

सुधि बुधि निद्रा अंग-दुति-भूख-प्यास सुख सात।
नास होहिं ये विरह में—दुःख रूप बनि जात।

६. सहुँ—से; साथ। बालक तें—बचपन से। अबोल—न बोलना, दूर रहना।

१०. नेहनहे—प्रेम में बँधे हुए। बरथाई—कठिनता से। उमहे—उमड़े। ककै—कर-कर। रहे—रुके।

१२. तरुन तन—पेड़ों पर। फूल—प्रफुल्लता का समय। चित्त—चित्त को भी।

नागिनी। रवत—रोता है।

७७. भृगुनंदन को परसा—परशुराम ने राम को धनुष दिया था, रावण को परशु का ध्यान रहा।

८७. भुवदेव—ब्राह्मण। बर—बलपूर्वक। मघवै—इन्द्र को।

८०. गजा—नगाड़ा बजाने का डंडा।

८१. देवनदी—आकाश-गंगा। नरदेव—राजा। हूकी—भयभीत। दंड द्वै—दो-दो घड़ी की (सेवा करने के निमित्त)।

८२. चूसैं—चूसते हैं,स्तनपान करते हैं। सुरभि—गाय। करन्ह—सूंड़ों से। आसन—बैठने की जगह। मद—गर्व। मदन—काम। डोरे—लाठी पकड़े हुए। सदन—घर, आश्रम।

८३. अनंता—पृथ्वी। समुद्रावधी—समुद्र पर्यन्त। सप्त ईति—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी, शुक, गृहयुद्ध—देश पर शत्रु का आक्रमण। जिन्हें—जिनके सामने कल्पवृक्ष अपने को तुच्छ समझ कर विमूढ़ बन जाते हैं। अल्प धी—अल्प होने की बुद्धि (भावना या समझ)।

८४. निम्नगा—नदी। छीर—दूध। पूर—प्रवाह।

८७. सती—महादेव की स्त्री।

८८. अलोक—अपयश।

८९. बालनाश—(१) बच्चों की मृत्यु। (२) केशों को मूँड़ना।

९०. द्विजवृत्तिन हरैं—(१) ब्राह्मण की वृत्तियाँ हरते हैं। (२) ब्राह्मण वृत्तियाँ पढ़ते हैं।

९१. नारी—(१) स्त्री, (२) नाड़ी। विधवा—(१) पतिहीन, (२) धव वृक्ष से रहित।

९३. आन जन्म—पुनर्जन्म नहीं लेते, मुक्त हो जाते हैं।

कविप्रिया

३. बिख मातें—विष से मतवाले होते हैं।

४. नृपति-सुता—कोई कथा-विशेष। चक—चक्र, दिशा। माँगने—वामन रूप में। द्वारपाल—राजा बलि के। दूत—पांडवों के। सूत—अर्जुन के।

काठ इ—सांदीपनि गुरु के लिए लकड़ी तोड़ कर लाते थे, भला काठ में क्या पाठ सीखते थे ?

५. सोने की लता—नायिका। श्रीफल के फल—कुच। सरोज—मुख। निरूपत—निरूपण, वर्णन करते हुये। सुआ—नासिका। खंजन के बालक—नेत्र।

६. केसौराइ—कृष्ण।

७. छांदबिनी—मेघ-घटा। कुकना—क्रुद्ध होना।

८. रस—प्रेम, प्रसन्नता। श्रम—अर्थात् व्यापार। बिभात—प्रभात दिन। सातौं सुख—मिलाओ, पहला सुख नीरोगी काया, दूजा सुख है धन की माया इत्यादि। अथवा।

सुधि बुधि-निद्रा अंग-दुति-भूख-प्यास सुख सात।
नास होहिं ये विरह में—दुःख रूप बनि जात।

९. सहुँ—से, साथ। बालक तें—बचपन से। अबोल—न बोलना, दूर रहना।

१०. नेहनहे—प्रेम में बँधे हुए। बरथाई—कठिनता से। उमहे—उमड़े। कर्कै—कर-कर। रहे—रुके।

१२. तरुन तन—पेड़ों पर। फूल—प्रफुलता का समय। चित्त—चित्त को भी।

नागिनी। रवत—रोता है।

७७. भृगुनंदन को परसा—परशुराम ने राम को धनुष दिया था, रावण को परशु का ध्यान रहा।

८७. भुवदेव—ब्राह्मण। बर—बलपूर्वक। मघवै—इन्द्र को।

८०. गजा—नगाड़ा बजाने का डंडा।

८१. देवनदी—आकाश-गंगा। नरदेव—राजा। हूकी—भयभीत। दंड इ०—दो-दो घड़ी की (सेवा करने के निमित्त)।

८२. चूसैं—चूंसते हैं,स्तनपान करते हैं। सुरभि—गाय। करन्ह—सूंड़ों से। आसन—बैठने की जगह। मद—गर्व। मदन—काम। डोरे—लाठी पकड़े हुए। सदन—घर, आश्रम।

८३. अनंता—पृथ्वी। समुद्रावधी—समुद्र पर्यन्त। सप्त ईति—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी, शुक, गृहयुद्ध—देश पर शत्रु का आक्रमण। जिन्हें—जिनके सामने कल्पवृक्ष अपने को तुच्छ समझकर विमूढ बन जाते हैं। अल्प धी—अल्प होने की बुद्धि (भावना या समझ)।

८४. निम्नगा—नदी। छीर—दूध। पूर—प्रवाह।

८७. सती—महादेव की स्त्री।

८८. अलोक—अपयश।

८९. बालनाश—(१) बच्चों की मृत्यु। (२) केशों को मूँड़ना।

९०. द्विजवृत्तिन हरैं—(१) ब्राह्मण की वृत्तियाँ हरते हैं। (२) ब्राह्मण वृत्तियां पढ़ते हैं।

९१. नारी—(१) स्त्री, (२) नाड़ी। विधवा—(१) पतिहीन, (२) धव वृक्ष से रहित।

९३. आन जन्म—पुनर्जन्म नहीं लेते, मुक्त हो जाते हैं।

[illegible]

३. लाल—लाल मणि । [illegible]

कृष्ण । [illegible] [illegible] ([illegible], सुहागिनी=नारी) । [illegible] ।

४. आनन—कानों में, [illegible] ।

५. [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] । जो आवै इ०—यहाँ हमारी [illegible] । [illegible]— तुम्हें हितकारी जान कर । [illegible] ([illegible]) । हेत—प्रेम ।

६. बैर—चर्चा, निंदा । [illegible] करने का साहस होता है । अंगुरीन [illegible]—अंगुली [illegible] चर्चा करना ।

७. हार—खेत । हारी—थक जाती हूँ, विकल होती हूँ । बनमाली—(१) वनों की माला वाला, (२) जल माला=बादल, (३) कृष्ण । नैन—नेत्रों,हृदय-कमल में कमलनयन कृष्ण को देखकर । [illegible]— जलपूर्ण नेत्रों वाली । आइ घने—उन से गहरे श्याम घन घन (बादल) की तरह होते हैं । घनस्यामनि के धाम—बादलों की ऋतु में ।

८. घोरत—गरजते हैं । सजल—सजल । [illegible]—चमकदार, या गहरा । इभ—हाथी । काल-कुटुंबिनी—काल की स्त्री ।

९. गुन—कारण । अपावन—इस अपवित्र को । [illegible] । सेस इ०—शेष को विषधर । विधि—विधाता । विधि-हीनो—उचित काम

न करने वाला, मूर्ख। सूर—सूर्य। पापु—इस पापी को।

१०. आये तें—प्रियतम के आने पर। मोलि लयी—दासी के समान। सौति—सौत भी कही सखी हुई है।

१२. हिरातु है—चला जाता है। फैलाइ डारि—बिखेर दे, फेंक दे। घनसार—कपूर। पिरातु है—पीड़ित होता है। छीर—दूध। डाढ़ो—जला हुआ। सिरातु है—शीतल होता है।

१३. पच्छिन इ०—पक्षियों के पीछे दौड़ना, व्यर्थ परिश्रम करना। मान—आदर भाव। आग इ०—संताप के बाद सुख मिलता है, एक दम नहीं।

१४. कदली—केला। बदली—बदरी, बेर। मलिनी—मैला (ऊँट का विशेषण)। नाग—नागर बेल। अवलोन—समूह, राशि।

१५. करै—ले कर। नतना—ढकने का वस्त्र (पाठांतर, बसना)। छल कै—बनावटी। चल कै—आकर। पतुकी—हाँड़ी या मटकी।

१६. दानी—जगाती। गो इ०—प्रेम चला गया? बैर करने लगी?

विज्ञानगीता

१. जहँ—अर्थात् काशी में। जगदीस—महादेव। कसैं—कष्ट उठा कर साधना करते हैं। प्रबोध-उदोत—ज्ञान का प्रकाश।

२. निरंध—बिलकुल अंधा। मिठानो—मीठा समझ कर। मन—

संसार में। रानो—राजा, स्वामी। बंदि—बंधन, कैद। बंदयखानो—बंदीखाना, कारागार।

३. जोर—अत्यन्त। आरतताई—दुःख, पीड़ा।

४. पेटनि-पेटनि—अनेक गर्भों में। नक्यो—पार किया (या, नाक में दम आ गया)। पेट तें—गर्भ में से। तक्यो—देखा।

५. परे—पड़े हुए। खैबो-ई-पीबो—खाना-पीना ही। निरै-दिवि—नरक और स्वर्ग। उचोटतु—ऊबता है।

६. विझुकैं—झिझकते हैं, डरते हैं। वृषभादि—धर्म आदि पैन (वृष=धर्म) बार—दरवाजे पर।

७, पासिक—फाँसी। लूहर—जलता काठ, पलीता। निनारे—अलग ही। पंच कूटहि करे—पाँच का समूह बनाकर, इकट्ठे होकर (या, खूब कुटाई कर डाली, कचूमर निकाल दिया)।

८. बरु—बल। नरदेव—राजा। बिलसैं—व्यवहार करता है। मूरि—जड़ी, औषधि।

०. तनत्रान—कवच। पोतो—जहाज। सम—शान्ति। बटपार—डाकू।

१०. समान—समझदारी। ईस कै—महादेव जी से। राघव की निसि-एकादशी।

११. कुचै—सिकुड़ती है। नवै नव—बार बार झुकती है, डिगती है। बालक तें—बचपन से। जुरा—एक राक्षसी, (या, मृत्यु या व्याधि)।

१२. सैहै—सहेगा। जा की—अर्थात ब्रह्म की।

१३. आछत--होते हुए। तिसना-तृष्णा। किसना-कृष्णा, काली, घोर अँधेरी।

१४. तरीन--नावों को

१५. डढ़ो--जला।

१६. नाकुल--नकुल, नेवला।

१८, अजीत--अजेय मन को जीतो।

१९. वस्तु--तत्त्व। परिग्रह--परिजन।